उत्सर्ग

उस गरिमामयी नारी को जो अभाव और पीड़ा में पली और संसार की कठोर वास्तविकता से टकराकर चूर-चूर हो गई..

एक धुँधली सन्ध्या को जिसका जीवन-दीप बुझ गया और कोयल नदी के तट पर जिसकी चिता धू-धू कर जल उठी..

जो शीतल झकोरे की तरह जीवन में आयी और हँसी-खुशी एव किलकारियों से जिसने घर-आँगन को भर दिया...

छाती में दर्द किन्तु ओठों पर हँसी लेकर जो दीप की लौ की तरह जलती रही ..

जो अपने भीतर एक तूफ़ान, एक अरमान छिपा कर गई...

जो बाज़ी में मुझसे जीत गई

उसी अभागिनी और पूजनीय नारी को यह पुस्तक (जिसे मैंने उसके जीवन-काल में ही उत्सर्ग करना चाहा था) अत्यन्त लज्जित और व्यथित होकर समर्पित करता हूँ ..

राधाकृष्ण प्रसाद

आदि और अन्त

टिप टिप...टिप ! रेमिङ्गटन मशीन पर रामनाथजी की अँगुलियाँ चल रही हैं। जिस तरह उनकी अँगुलियाँ द्रुतगति से, अविराम चल रही हैं, मन उनसे भी बाजी मारना चाहता है। वह अपनी बाहर-भीतर की फैली समस्याओं में उड़ रहा है। रामनाथजी बहुत कुछ सोचते हैं। सोच रहे हैं, पर सोचना खतम नहीं हो पाता। इधर फाइलों के ढेर पड़े हैं, उधर साहब अभी गुर्रा कर कह गया है कि सात बजे तक सब काम खत्म हो जाना चाहिए।

रामनाथजी सोचते हैं—रेखा को बुखार है, गिरजू का नाम कट गया है, मकानवाला रोज धमकी दे जाता है, और सबसे ऊपर, शारदा का ब्याह ! शारदा अब सत्रह पार कर चुकी है।

रामनाथजी के माथे की सिकुड़नें और भी घनीभूत हो उठती हैं। इस पैंतालीस साल की जिन्दगी में रामनाथजी ने दुनिया के बहुत आँधी-तूफान झेले हैं। टाइप के अक्षर उन्हें रेंगते हुए कीड़े-से प्रतीत होते हैं। ये कीड़े रामनाथजी की ओर लपकते नज़र आते हैं। वे कभी-कभी अँगुलियाँ रोक ठिठक जाते हैं। फिर चश्मे को (जो बीस साल के अनवरत परिश्रम के बाद अपनी सामर्थ्य खो चुका है और निर्वाण की प्रतीक्षा में है) कपड़े से पोंछ, वे अपने को सँभालने की कोशिश करते हैं।

बगल में एक और सहयोगी हैं—दयाशंकर। वे पूछते हैं—"क्यों भई, बीड़ी पीयोगे ?"

उत्तर में रामनाथजी मुस्करा देते हैं। इस मुस्कराहट का अर्थ दयाशंकर को मालूम है—अर्थात् 'नहीं,' अथवा—'भई, तुम देख ही रहे

साल हो गया। बड़ी लड़की विमला का ब्याह कर चुके हैं। ऋण से ग्रस्त हैं। अभी ६१३) रुपये महाजन को देने हैं! कड़े सूद पर आज से तीन साल पहले ८१३) रुपये लिये थे। सूद और असल में २००) तो किसी तरह भर चुके हैं; किन्तु अभी ६१३) रुपये देने हैं।

और शारदा भी सत्रह पार कर रही है। इसका ब्याह करना है। यह लड़की वास्तव में शारदा है। लड़की के रूप और गुणों को देख कर पिता के के प्राण पुलकित हो उठते हैं। रूप की तो साक्षात् देवी है। अभागी को इतना रूप, इतनी विद्या, इतनी सुघड़ता देकर भगवान् ने मुझ कंगाल के घर क्यों भेज दिया? रामनाथजी की आँखें सजल हो उठती हैं।

लड़की छात्रवृत्ति पाकर पढ़ती रही है। नौ कक्षाएँ पार कर वह एण्ट्रेन्स की तैयारी कर रही थी, किन्तु माँ की मृत्यु ने आगे नहीं पढ़ने दिया। घर का सारा दायित्व उस पर आ गया।

रेखा तेरहवें साल में है। बिरजू दस का और राजू चार साल का है।

रेखा को बुखार है। एक हफ्ते से वह उसे छोड़ने का नाम नहीं लेता। होमियोपैथिक दवा से जब फायदा नहीं हुआ, तो एलोपैथ डाक्टर को दिखलाया। दवा में २) रुपये खर्च हुए, किन्तु बुखार कम नहीं हुआ। रोज इतने पैसे वे कहाँ से लाते? फलतः अब अस्पताल से दवा आती है।

अस्पताल से दवा मुफ्त में मिलती है। दयालु सरकार ने उन जैसे गरीब लोगों के लिए ही अस्पताल का निर्माण किया है। किन्तु अस्पताल में दवा के बदले झिड़कियाँ ही अधिक मिलती हैं। और बहुत देर के बाद जो दवा मिलती भी है, वह बहुत साधारण होती है। उसमें पानी प्रचुर परिमाण में रहता है। फलतः दवा छायावादी कविता के अर्थ की तरह गोपित रहती है।

रामनाथजी फिर लौटे। अपनी अन्यमनस्कता पर सम्भवत. कुछ लज्जित भी हुए।

लौटते-लौटते नौ बज गये। दिन के नौ बजे वे चले थे और अब रात के नौ बजे लौटे हैं।

शारदा प्रतीक्षा में थी। मुस्करा कर बोली—"कहाँ अटक गये थे, बाबूजी ?"

छाता और टोपी रखते हुए रामनाथजी ने कहा—"नहीं बेटी, आफिस से ही देर में छुट्टी मिली।"

लोटे में पानी रक्खा हुआ था। रामनाथजी ने हाथ-पैर धोकर पूछा—"रेखा कैसी है ?"

"अच्छी है। बुखार कल से कुछ कम है।"

रामनाथजी जानते हैं, यह शारदा के नित्य का उत्तर है। उनकी यह बिटिया अपने क्लान्त पिता के मस्तिष्क पर थोड़ी भी चोट नहीं देना चाहती। रामनाथजी का हृदय भर आता है। इस मातृहीना लड़की की गुरुतर वेदना वे समझ पाते हैं।

"रेखा सो गई ?"

"हाँ, बहुत देर तक आपकी राह देखकर अभी सोई है।"

रूमाल की पोटली बढ़ा कर रामनाथजी बोले—"उनके लिए कुछ फल और बिस्कुट हैं।"

शारदा चुपचाप उन्हें लेकर आगे बढ़ गई। खाते-पीते ग्यारह बज गये। बच्चे पहले ही खाकर सो चुके थे।

अन्त में शारदा खाने बैठी। पहला कौर ज्योंही उसने उठाया कि पिता आ पहुँचे। बोले—"हमारी खड़ाऊँ किधर है ?" किन्तु शारदा की थाली की ओर देखकर अवाक् रह गये। शारदा सिर्फ नमक के साथ रोटी खा रही थी।

रामनाथजी जरा मुस्करा कर बोले—"सब तरकारी तुमने मुझे ही खिला दी बेटी ?"

"नहीं तो बाबूजी, आज मुझे तरकारी खाने की इच्छा नहीं है।"

रामनाथजी को याद आया, तरकारी बहुत कम बची है, इसकी सूचना आज सुबह ही शारदा दे गई थी। वे सस्नेह शारदा की ओर देखते रहे।

आज की तरकारी अच्छी बनी थी। फलत उन्होंने खूब माँग माँग कर खाई थी। कहा था—"तेरे हाथ में जादू है बेटी! ऐसी तरकारी . ।"

"रहने भी दीजिये! नमक अधिक पड़ा होगा, इसलिये चिढ़ा रहे हैं!" शारदा ने लजा कर उत्तर दिया। फिर आगे बढ़ कर बोली—"और लीजिये न।" कह कर तरकारी का शेष अंश थाली में डाल दिया।

उस समय रामनाथजी का ध्यान कहीं दूसरी ओर था। अपनी इस लड़की की सुघड़ता को याद कर उनका दिल भर गया था। वे सोच रहे थे, अभागी है! तभी तो मुझ कंगाल के घर पड़ी! इसे तो राजकन्या होना चाहिये था!

कुछ क्षणों तक रामनाथ ठिठक कर शारदा को देखते रहे, फिर हलके पैरों से लौट गये। वे भूल गये कि खड़ाऊँ के बारे में वे पूछने आये थे।

बहुत देर तक रामनाथजी शारदा के विषय में सोचते रहे। उसके ब्याह की चिन्ता परेशान करती रही। सोचा, शारदा के लिये सुयोग्य वर वे क्या पा सकेंगे? दरिद्र की दरिद्रता ही पहले आती है। दरिद्रता के आवरण में सारा रूप, सारा कौशल विकृत दीखता है। लोग दरिद्रता के ऊपर के फटे और जीर्ण-शीर्ण आवरण को ही देखते हैं। इसके भीतर कोई रत्न भी रह सकता है, यह सोचने और समझने की उन्हें न फुर्सत है, न जरूरत। वे दरिद्रता की दुर्गन्ध पा, नाक पर रूमाल रख, आगे बढ़ जाते हैं। और बेचारा गरीब आँखों में आँसू भर देखता ही रह जाता है। वह चिल्ला कर कहता है 'अरे लोगो, तुम देखो भी कि इस गुदड़ी के भीतर क्या है?'

लोग उपेक्षा और घृणा से विहँस कर उत्तर देते हैं—'गुदड़ी के भीतर गूदड़ ही रहती है। हो सकता है कि अन्दर वह और भी खराब हो!'

यह दुनिया है—पैसों पर टिकी हुई दुनिया! साफ कपड़ों और सुन्दर कोठी में ही आज की सभ्यता दिखाई पड़ती है। इन सफेदपोशों ने ही सभ्यता और इज्जत नाम की वस्तु पर अपना एकच्छत्र अधिकार जमा रक्खा है। गरीब को उनके पास फटकने की इजाजत नहीं।.. दूर रहो, अन्धे हो क्या? तुम्हारी यहाँ आने की हिम्मत! बौना होकर चाँद छूना चाहते हो?

रामनाथजी ने एक दीर्घ साँस ली—साँस ली और सोने का उपक्रम किया।

× × ×

दिन तो इसी तरह बीतते चले जाते हैं, पर रामनाथजी की चिन्ता उनका पीछा नहीं छोड़ती। रामनाथ सोचते हैं, परन्तु सोचना खतम ही नहीं होता। रेखा अच्छी हो गई है। घर का काम पहले-जैसा चल रहा है।

रामनाथजी के हृदय में बहुत-सा धुआँ भर गया है। अभी कल ही पड़ोस के लाला विश्वम्भर ने टोका था—"क्यों जी, शारदा की कुछ फिकर कर रहे हो?"

रामनाथजी को चुप रह जाना पड़ा।

लाला बोले—"भाई, जमाना खराब है। लड़की की बढ़ती उम्र नदी की बाढ़ होती है।"

रामनाथ चुपचाप लौट आये।

और रात करवटें बदलते-बदलते उन्होंने बहुत कुछ सोच डाला। वे जानते हैं कि गरीब की लड़की के लिए सुयोग्य वर पाना एक देव-वरदान ही है। विमला के लिये वर खोजने में कितनी दिक्कतें हुईं, यह

सोचकर रामनाथ के रोंगटे खड़े हो जाते हैं। आरज़ू-मिन्नत, गिड़गिड़ाहट, दीनता, और न जाने कितनी बातें सामने आ गईं।

खैर, जो हो, विमला तो किनारे लग गई। भगवान् की दया से कोई बुरी जगह भी नहीं गई। लड़के के बाप ने ५०१) रुपये नकद लिये। उनके जन्म की जमा पूँजी इस शादी में स्वाहा हो गई। वे इतनी संख्या में बारात लेकर पहुँचे कि क्लर्क रामनाथजी की टाँगें लड़खड़ा गईं। किन्तु करते क्या? इज्जत का सवाल था। पत्नी के गहने गिरवी रख, वे बारात का प्रबन्ध कर सके।

एक टाइपिस्ट-क्लर्क का दामाद डिप्टी-मजिस्ट्रेट नहीं हो सकता। दामाद मैट्रिक पास था और मुख्तारी पढ़ रहा था। जो हो, रामनाथ को एक तरह से संतोष ही हुआ। आज विमला एक बच्चे की माँ है और उसका पति खाने-पीने भर को उपार्जन कर लेता है। रामनाथ उन्हें सुखी देखकर सुख का अनुभव करते हैं।

किन्तु इस शारदा का क्या होगा, वे सोच नहीं पाते। इस समय तो रामनाथ की हालत बड़ी दयनीय है।

दशहरे की छुट्टियाँ हैं। उन्हें मालूम हुआ है कि मिर्जापुर में एक लड़का है, जो एम० ए० में पढ़ रहा है। उसके पिता पेशकार हैं। बड़े हौसले लेकर रामनाथ गये। कुछ परिचितों से सिफारिशी पत्र भी लिखा ले गये।

पेशकार साहब का चेहरा देखकर रामनाथ सकपकाये, किन्तु धैर्य बटोर कर उन्होंने अपनी प्रार्थना सामने रक्खी।

भौंहें सिकोड़ कर, पेशकार साहब रामनाथ की ओर देखते रहे। हुक्के का कश खींचकर वे बोले—"साहब, मैं खरी-खरी बातें जानता हूँ। मैं नकद ५०००) रुपये लूँगा, तब इस सम्बन्ध को पक्का करूँगा।"

रकम सुनकर रामनाथजी को लगा, मानो कोई चीज गले में अटक गई। आँखों के आगे अँधेरा छा गया। वे कुछ क्षणों तक किंकर्त्तव्य-

विमूढ़ हो रहे, और जब उनकी चेतना लौटी तो वे बोले—"भाई साहब, मेरी इज्जत आपके हाथ है। मै आपके पैर पकड़ता हूं, मेरा उद्धार कीजिये !" रामनाथजी का गला रुंध गया।

"हरे हरे !" पैर हटाते पेशकार साहब झुँझला कर बोले—"आप तो अजीब आदमी मालूम पड़ते हैं, साहब ! यह कहिये कि मैं आपकी गरीबी पर रहम खाकर, इतनी कम रकम कह रहा हूं, नहीं तो इससे दूनी रकम मुझे मिल रही है।"

रामनाथजी का सारा शरीर अवसन्न हो गया।

पेशकार साहब उठते हुए बोले—"तो अब मुझे इजाजत दीजिये।"

रामनाथजी बैठे गले से बोले—"पेशकार साहब, आप लड़की देख लें, मुझे विश्वास है कि आप उसे देखकर अपना मत जरूर ही बदल देंगे।"

पेशकार साहब व्यंग्य से बोले—"हाँ जनाब, अपनी लड़की की कौन तारीफ नही करता ?" और बिना उत्तर की प्रतीक्षा किये ही वे भीतर चले गये।

रामनाथजी कुछ देर तक स्तब्ध रहे। फिर धीरे-धीरे बाहर निकल आये। उनकी टाँगें लड़खड़ा रही थी और आँखों में आँसू आना चाहते थे।

बाहर आते ही उन्होंने एक तरुण को देखा। देखा और पहिचान गये कि इसी लड़के के लिए वे आये थे। एक दीर्घ उसाँस उनके मुंह से निकल गई।.. लड़के के मुख पर एक ऐसा सौम्य भाव था, जिससे उनका मन अनायास आकर्षित हो गया। लड़के पर पिता की कोई छाप नही थी। हंसता-सा चेहरा, सुन्दर मुख, आकर्षक व्यक्तित्व ! लड़के का फोटो वे पहले ही प्राप्त कर चुके थे, फलतः देखते ही पहिचान गये। न जाने क्यों, उन्हें लगा, यह लड़का शारदा के बिलकुल योग्य है ! कितनी अच्छी जोड़ी होगी !

वह एक आराम कुरसी पर लेटा कोई अखबार पढ़ रहा था। एक

चार आँखें उठाकर उसने आगन्तुक की ओर देखा और कुछ क्षणों त देखता रहा। फिर अपनी आँखें अखबार पर गड़ा लीं।

रामनाथजी को कुछ कहने की इच्छा हुई। उन्होंने एकबार इस लिए अपने को प्रस्तुत भी किया, किन्तु आगे न बढ़ सके। पहले व अपमान अभी तक उनके हृदय को वेदना पहुँचा रहा था।

कुछ क्षणों तक वे खड़े रहे, फिर तेजी से बाहर हो गये।

घर लौट कर रामनाथजी पहले से भी अधिक गम्भीर हो गये। अब बहुत रात बीतने पर भी उन्हें नींद नहीं आती।

शारदा बोली—"आप ऐसे क्यों हुए जा रहे हैं, बाबूजी?"

रामनाथ चुप रहे।

"बाबूजी, अगर आप मुझे इसी तरह पीडा देंगे, तो कुएँ में कूद पड़ूँगी!" शारदा फफक कर रो पडी—"आप मेरे लिए अपना शरीर क्यों गला रहे है—बाबूजी? मुझसे तो अब नहीं देखा जाता!"

रामनाथ खिलखिला कर हँस पडे। इस खिलखिलाहट का रहस्य शारदा को मालूम है। जब उसके पिता को कोई हलका आघात पहुँचता है तो वे ओठों में मुस्कराते है। किन्तु बडे और सांघातिक आघात पर वे खिलखिला पडते हैं। यह खिलखिला कर हँसना, उनका रोना है। ऐसा रोना है जो दुःख की चरम-सीमा पर रोया जाता है। शारदा को मालूम है, उसके पिता उसकी माँ की मृत्यु पर भी ऐसे ही खिलखिला कर हँसे थे। वे खिलखिला कर हँसे और बोले—"बच्चो, तुम्हारी माँ तो स्वर्ग को गई है। इसमें रोने की क्या बात है? यह तो खुशी का समय है!"

मर्म का घाव शारदा देख सकी थी।

.. कुछ दिन इसी तरह कटे।

दिन की आलस भरी वेला में जब शारदा का मन नहीं लग रहा था, जी बहलाने का उसने रामायण उठा ली। रामायण को ज्योंही

उसने खोला, एक फोटो शारदा के पैरों के पास आ गिरा। उठा कर जो उसने देखा, तो देखती रह गई। उस 'सुन्दर और भव्य चेहरे की ओर से आँखें न फेर सकी।

बहुत देर तक वह कुछ सोचती रही। वह जान गई कि इन्हीं के लिए बाबू जी मिर्जापुर गये थे और हताश होकर लौटे है।

शारदा ने आकाश की ओर देखा। काले-काले बादल लहरा रहे थे। वे उमड-घुमड कर, दल बाँध कर दौडे आ रहे थे।

शारदा ने सोचा—काश ! ये बादल उसे बहा ले जाते !

शारदा को रुलाई आ रही है। रेखा और बिरजू स्कूल गये हैं। राजू सोया है। पास ही के लोहार का हथौडा तप्त लोहे पर पड रहा है, और उसकी आवाज शारदा के कानों से टकरा-टकरा जाती है। शारदा को लगता है, मानो यह हथौडा उसके कलेजे पर ही पड रहा है—घन् . घन ..घन् . !

आज पडोस की सरस्वती भी बातें करने नहीं आई। बुनने के काम में भी जी नहीं लगा।

फोटो को हाथ में रख कर वह निर्निमेष दृष्टि से देखती रही। देखती रही और आँसू निकलते रहे।

आँचल से आँसू पोछकर शारदा ने सोचा—'छि , मै क्यों रो रही हूँ भला ? यह कितनी लज्जा की बात है ! नहीं, मै नहीं रोऊँगी।'

आँसू पोंछ कर वह राजू के पास आ खडी हुई। देखकर बड़ी ममता आई। भोले भाई का निर्दोष मुख बडा प्यारा लगा। छोटे ओठ फडफडा रहे थे, उन पर मुस्कान की एक हलकी छाया थी।

शारदा झुकी और प्यार से अपने कपोल राजू के नन्हे वक्षस्थल में छिपा गुनगुनाई—"भैय्या मेरे !"

बच्चा इस अनाहूत स्नेह से नींद खोकर रोने लगा।

(२)

अब रामनाथजी को सब्र नहीं है।

प्रत्येक पल एक युग मालूम पडता है। लगता है, मानो वे बीच समुद्र में बिना किसी सहारे के बह रहे है। दुनिया सूनी लगती है, मन चचल रहता है। जहाँ वे जाते हैं, मोटी रकम की ही माँग की जाती है। आखिर शारदा को वे किसी जाहिल और काहिल के हाथो तो नही सौप सकते। अभागिनी का भाग्य ! रूप की इतनी राशि बटोर कलमुँही क्यों पैदा हुई ? शारदा को देखकर उन्हे लगता है, भगवान् क्या इतने निर्दय हो सकते है ? क्या ललाट इतना गोरा देकर, उस पर काली लकीरें खीची जा सकती हैं ?

डिगरी के अनुसार ही रकम बढती है। एम० ए० तक पहुँचते-पहुँचते वह इतनी हो जाती है कि रामनाथजी सारी जिन्दगी में उतनी नही पैदा कर सकते। एक जगह सुनाई पडा, दस हज़ार ! लडका एम० ए० एल्-एल्-बी० है ! रकम सुनकर रामनाथ सीधे लौट आये। उत्तर में 'हाँ' या 'न' भी नही कह सके।

और इतने में आशा की एक किरण दिखलाई पडी है। पडोस के लाला विश्वम्भरनाथ ने कहा—"सुनो भाई रामनाथ, तुम्हारा दु:ख और नही देखा जाता। हमारे चचेरे भाई का एक लडका है। मुझे यकीन है, वह राज़ी हो जायगा। लडके की उम्र अट्ठाई-तीस के करीब होगी। पहली स्त्री हाल में मरी है। मैंने उसको कई बार समझाया, पर पहली स्त्री के शोक मे वह शादी करने को राज़ी नही हुआ। आख़िर जब मैंने शारदा की तारीफ की तो वह देखने को किसी तरह राजी हो गया है। शारदा वहाँ रानी होकर रहेगी—रानी ! जानते हो, वह आबकारी का दारोगा है—दारोगा ! सैकडों की आमदनी महीने में है। रुपया-पैसा वह नही लेगा। सुधारक है। बडी मुश्किल से राज़ी कर पाया हूँ।"

रामनाथजी पहले तो सकपकाये, किन्तु उनकी बड़ाई सुन कर आनन्द में विभोर हो गये। उच्छ्वसित कंठ से बोले—"भैया...मेरी आबरू तुम्हारे हाथ में है।"

लाला विश्वम्भरनाथ ने स्वर में सहानुभूति भर कर कहा—"भाई, तुम्हें मैं क्या आज से जानता हूँ? जब से तुम यहाँ नौकरी पर आये, तभी से तो हमारी-तुम्हारी जान-पहिचान है खैर, तो मैं लिख दूँ कि अगले रविवार को वह यहाँ आवें?"

"जैसी तुम्हारी मर्जी!" रामनाथजी लाला के हाथ पकड़ कर बोले। रामनाथजी को तिनके का सहारा मिला।

जब रामनाथजी घर लौटे तो उनका चेहरा बहुत दिनों के बाद आज कुछ खिला था। शारदा ने लक्ष्य किया कि आज बाबूजी खुश हैं। आज बहुत दिनों के बाद बाबूजी ने तरकारी की तारीफ की। उस दिन के बाद वे चुपचाप कौर निगल कर पानी पी लेते थे। कुछ बोलते तक न थे। आज बात क्या है?

रामनाथजी ने मुस्करा कर कहा—"भगवान् की इच्छा हुई बेटी, तो तू राजरानी होकर रहेगी!"

आशय समझ कर शारदा का चेहरा लज्जा से लाल हो उठा।

"अगले रविवार को लड़का खुद देखने आयगा। वह दारोगा है। देख बेटी, जो पूछे उसका ठीक-ठीक जवाब देना ..लजाना मत...।"

शारदा चुपचाप बैठी रह गई। न उठ सकी, न जा सकी।

धीरे-धीरे रविवार भी आ गया। लाला विश्वम्भरनाथ ने खबर भेजवाई: माधव आ गया है। सब इन्तज़ाम ठीक रखिये। हम लोग दो घण्टे के भीतर आते हैं।

नाटक का सारा आयोजन हुआ।

माधव आया—आबकारी का दारोगा! रामनाथजी ने अपने होने-वाले दामाद को देखा। बताई उम्र से निश्चय ही कुछ वर्ष अधिक का

वह लगता था। चेहरे पर एक रोब, जिसे देखकर आदमी भय पा सकता है, स्नेह नहीं।

बढ कर परिचय हुआ और फिर शिष्टाचार-प्रदर्शन और अन्त में शारदा को लाया गया।

शारदा ने एक गुलाबी साडी पहिन रक्खी थी। कानों में नये ढग के ईयर-रिङ थे। अपने को उसने विशेष रूप से नहीं सजाया था, किन्तु इसी रूप में जब वह कमरे के भीतर आई, तो लगा मानो ज्योति फैल गई।

आबकारी के दारोगा—माधव की आँखें झिलमिला गई। कुछ क्षणों तक वह चकित भाव से शारदा को देखता रहा।

लाला विश्वम्भरनाथ रामनाथजी की ओर देख, मुस्करा दिये। लाला ने माधव से कहा—"पूछो जी, पूछो। तुम्हें क्या पूछना है?"

माधव ने शारदा पर अपनी आँखें गडा कर कहा—"मुझे कुछ नहीं पूछना है।"

इस बार रामनाथजी बोले—"स्कूल में यह सदा अव्वल रही है। गाने में इसे कई तगमे मिल चुके हैं और . ।"

लाला मुस्करा कर बोले—"मैं क्या यह सब नहीं जानता हूँ?"

अभिनय समाप्त हुआ। रामनाथ दोनों के साथ बाहर निकल आये और शारदा भीतर चली गई।

शारदा भीतर आई, और न जाने क्यों उसका मन रोने को हो गया। अपने होनेवाले पति की एक झलक उसने भी पाई। किन्तु न जाने क्यों उसे लगा, जैसे यह ठीक नहीं हुआ। शारदा ने अपनी कल्पना में पति का जो चित्र खींचा था, यह उससे सर्वथा भिन्न था। शारदा की ओर वह इस तरह नजर गडाये था कि वह पानी-पानी हो गई!

खिलाने-पिलाने का भार शारदा ही पर था। बच्चे आश्चर्य की आँखों से यह सारा काण्ड देख रहे थे।

रेखा पास आकर बोली—"इन्ही से व्याह करेगी दीदी ? नही दीदी, इनसे व्याह न करो।"

अबोध रेखा की बातें सुनकर शारदा मानो लज्जा के समुद्र में डूब गई। रेखा को गले से छुड़ाती बोली—"हट शैतान, तेरा ही व्याह इनसे होगा।"

अगूठा दिखाकर रेखा बोली—"ऊहुं .मै क्या इतने बडे आदमी से व्याह करूंगी ?"

रेखा की मुद्रा देख, कातर होती हुई भी शारदा खिलखिला कर हँस पड़ी।

वे चले गये। शारदा ने सुना, अगले महीने मे ही व्याह होगा।

उन लोगो के चले जाने के बाद रामनाथजी अपने कमरे मे बैठ कर कुछ सोचते रहे।

खाने मे आज शारदा का जी नही लगा। वह चुपचाप न जाने, कितनी बातें सोचती रही।

पिता ने पुकारा—"शारदा बेटी !"

विचार में व्यतिक्रम हुआ। बोली—"आई, बाबूजी !"

आँखो में सम्भवत कुछ आँसू इकट्ठे हो गये थे। पानी से मुंह को अच्छी तरह धोकर वह पिता के पास जा खड़ी हुई।

रामनाथजी कुछ क्षणो तक लडकी के चेहरे की ओर देखते रहे। फिर दृढ स्वर में उन्होंने पूछा—"सच कहना बेटी, तुम्हे इस बारे में कुछ कहना है ?"

बात सुन कर शारदा मौन रह गई। बिना उत्तर दिये वह चुपचाप जाने लगी।

पिता ने पुकारा—"शारदा !"

स्वर की कातरता ने शारदा को लौटने पर बाध्य किया।

"बोलो बेटी, मुझसे मत लजाओ।"

शारदा के मन में आँधी थी। अपने को संयत कर उसने कुछ कहना चाहा, किन्तु पिता के कातर मुख की ओर देख कर वह अवाक् रह गई। हाय, उसका यह गरीब पिता कितनी मुश्किलों से यह सम्बन्ध कर पाया है! शारदा क्या ये सारी बातें नहीं जानती? वह क्या पिता को रोज की चिन्ताओं में जलते नहीं देखती।

आँसू का वेग रोक शारदा बोली—"आपके निश्चय को कभी मैंने टाला है बाबूजी? मैं क्या नहीं जानती कि मेरे लिये ही आप दिन दिन अपना शरीर गला रहे हैं? आप क्या गैर हैं?"

रामनाथजी के चेहरे पर एक हलकी मुस्कराहट खेल गई।

× × ×

विवाह हो गया। रामनाथजी ने मृत पत्नी के बचे गहने बेच डाले। महाजन से गिडगिडा कर कुछ और रुपये लिये। किसी तरह विवाह हुआ। दारोगा साहब उदार निकले कि बहुत ही कम बाराती लाये। लडकी के पिता की हैसियत आबकारी के दारोगा से छिपी नहीं रही। उन्होंने कुछ रुपया अपने श्वसुर को देना चाहा था। किन्तु रामनाथ ने कडी भाषा में जवाब दिया—'साहब, मैंने आपको बेटी नहीं बेची है।' फलत: दारोगाजी बहुत ही संक्षेप में आये। किसी तरह विवाह हो गया।

शारदा की विदाई का समय आया। जिस अवसर के लिये रामनाथ को रात भर नींद नहीं आती थी, वह अवसर भी आ गया। उन्होंने एक दीर्घ साँस ली। कौन जाने, यह साँस किस व्यथा की प्रतीक थी?

किन्तु रामनाथ—सच पूछिये, तो सन्तुष्ट नहीं लगे। न जाने क्यों, उन्हें लगा, यह समाप्ति नहीं है। अपने दामाद को पाकर उन्हें अधिक खुशी नहीं हुई। पिता का वह स्नेह भी नहीं उमडा, जो उमडना चाहिये था।

सच पूछिये, तो वे रोये—भीतर ही भीतर रोये। बातें वे नहीं समझ

रहे थे, सो बात नहीं। समझे और इसी की अनुभूति ने उनके हृदय को मसल डाला।

एक बार उन्होंने शारदा की ओर देखा—प्रभात में सद्य स्फुटित गुलाब के समान शारदा को देखा और दूसरी ओर उसके पति को। मन एक वितृष्णा से भर गया। एक ओर पत्थर, दूसरी ओर कली। एक ओर सौन्दर्य अपनी सारी कोमलता लेकर उपस्थित था, दूसरी ओर एक शुष्क व्यक्तित्व 'अह' की परिधि से घिर कर कठोर प्रतीत हो रहा था।

और आँखों में जल भर, जब शारदा अपने पिता के चरण छूने बढ़ी, तो रामनाथ खिलखिला कर हँस पड़े। इस हँसी ने उनके दामाद आबकारी के दारोगा को भी चौंका दिया! शारदा की आँखे पिता के मुख पर स्थिर हो गईं। यह खिलखिलाहट! यह हँसी!

पिता के दर्द को वह समझ सकी, वह और भी बहुत कुछ समझ सकी।

शारदा चली गई। वह पति के घर पहुँची। पड़ोस की औरतें 'बहू' देखने आई थीं। एक अधेड़ औरत ने कहा—"चाँद लाये हो, दारोगा बाबू!"

माधव मुस्करा कर रह गया।

नौकरानी बोली—"अरे, तुम लोग बहू को क्या घेरे ही रहोगी? बेचारी को हाथ-मुँह तो धोने दो!"

आज शारदा की सुहाग-रात थी।

घर में अपना कहने लायक कोई नहीं था। न जाने कहाँ की एक बुआ आई थी, जो दो-चार रोज में लौट जाने को थी।

शारदा का मन जल रहा था। इस हवा में उसका दम घुट रहा था। हृदय का सारा उल्लास निस्पन्द पड़ा था। ब्याह के पहले जितनी रंगीन कल्पनाएँ शारदा ने की थी, वे सब धूमिल पड़ती जा रही थीं।

आदमी दु:ख के पहले धक्के को सहते समय तिलमिला जाता है। सोचता है— हाय, इतना बड़ा दु:ख क्या मैं सह सकूँगा? यह चोट तो सांघातिक है। इससे क्या मैं जीवित रह सकूँगा? पहली चोट अक्सर तीखी होती है। किन्तु जब चोट पर चोट आने लगती है, तो आदमी चोट खाने का अभ्यस्त हो जाता है। और एक दिन ऐसा आता है कि वह अपनी पहली चोट को याद कर हँस उठता है। सोचता है, पागल था मैं! इतनी चोटों के बाद भी तो मैं ज़िन्दा हूँ। प्राण क्या इतने सस्ते हैं, जो चोट मात्र से निकल जायें! मैं तो इनसे भी भयानक चोटों की आशंका कर रहा था।

धीरे-धीरे शारदा ने अपने को अभ्यस्त बना लिया। कुछ ही दिनों में अपने पति और उसके इर्द-गिर्द चक्कर मारनेवाली नेकनामियों से भी वह परिचित हो गई।

उसका पति आबकारी का दारोगा था, कोई मामूली आदमी नहीं। फलत वह मामूली आदमियों से अलग, कुछ हैरतअंगेज काम किया करता था। पड़ोस की तारा ने एक दोपहर को बहुत-सी बातें बतलाई? तारा का घर उसके घर के पिछवाड़े था। उसके पति ने कपड़े की एक दूकान खोल रक्खी थी। कुछ ही दिनों में तारा उससे हिलमिल गई।

उस दिन तारा ने जो बातें कही, उससे तो शारदा के रोंगटे खड़े हो गये। तारा बोली—"बहिन, दारोगा साहब ने पहली स्त्री को गर्भावस्था में ही इस कदर पीटा कि एक हफ्ते के अन्दर बेचारी घुल-घुल कर मर गई! एक लड़का चार-पाँच साल का था, वह भी थोड़े दिन के बाद चल बसा। औरत के मरने के बाद न जाने कहाँ से, एक बंगालिन बुला लाये। कुछ महीने उसे रख कर, एक दिन पीट-पाट कर निकाल दिया। तुम्हें लाने के पहले मुहल्ले की एक जवान कहारिन को रक्खा था, और ..।"

तारा ने देखा, शारदा हाथ से मुँह छिपा सिसक रही है ।

तारा चुप हो गई । फिर सान्त्वना देने के स्वर मे बोली—"भाग्य की रेख क्या कभी मिटी है, बहिन ? खैर, तुम घर सँभाल सकती हो। अभी भी विशेष बिगडा नही है...।"

तारा के चले जाने के बाद शारदा का रुका वेग और भी टूट पडा। इन कुछ ही सप्ताहों की जिन्दगी से वह काफी ऊब चुकी थी।

आबकारी के दारोगा को शराब मुफ्त पीने को मिलती, इस कारण वह प्रकाण्ड पियक्कड हो गया था। होश में आने पर भी मुँह से गालियाँ बकता रहता, किन्तु वे इतनी वीभत्स नही होती थी, जितनी नशे की हालत मे निकलती थी। उन गालियों, अपशब्दो को सुनते ही शारदा को अपने कान बन्द कर लेने पडते। भाषा-विज्ञान के विद्वानो को खोज करने के लिए उन गालियों में अनेक नये शब्द मिल सकते थे। वे शब्द कुछ तो अपने मौलिक रूप मे थे और कुछ हमारे आबकारी के दारोगा की विद्वत्ता के परिचायक थे।

मायके से पिता आये। शारदा के अत्यन्त निष्प्रभ रूप और सजल आँखो को देख रामनाथजी खिलखिला पडे—वैसी ही खिलखिलाहट, जिसमे वे हृदय का शोक प्रकट करते हैं। बोले—"पगली, अब भी घर की याद मे शरीर गला रही है ? अरे बेटा, अब तो तेरा यही घर है। पति ही तो दुनिया में ।"

शारदा का चेहरा और भी पीला पड़ता गया।

"घर चलेगी बेटी ?"

"हाँ बाबूजी, मैं यहाँ मर जाऊँगी !" शारदा का स्वर रुँधा था। बात छेडने पर दारोगा दामाद ने दो टूक उत्तर दिया—"जब आपको अपनी बेटी अपने ही घर रखनी थी, तो शादी क्यो की . ?" अर्थात् दूसरे शब्दो मे उसने कहा—जी नही, बिदाई नहीं हो सकती।

रामनाथ मुस्करा कर बोले—"भाई, तुम्हारी मर्जी !" और शारदा को समझा-बुझाकर वे लौट गये।

दिन किसी के रोके नहीं रुकते। अपनी गति में वे चलते चले जाते हैं। कुछ महीने बीत गये।

एक दिन पति ने कहा—"एक आदमी की रसोई और बनेगी; जयन्त आयगा।"

शारदा को इतना ही मालूम है कि जयन्त पति का ममेरा भाई है। यहीं की यूनिवर्सिटी में पढ़ता है।

रविवार का दिन था। आकाश में सुबह से ही बादल छाये थे। जयन्त आया। नीचे से पुकार कर बोला—"माधव भैय्या!"

माधव मञ्जन से दाँत साफ कर रहा था। शारदा की ओर देखकर कहा—"शायद वह आ गया, नीचे जाकर खोल दो।"

पति की आज्ञा पा शारदा ने नीचे जाकर दरवाजा खोला, तो तेजी के साथ एक युवक ने प्रवेश करना चाहा। किन्तु यह क्या? शारदा पत्थर की मूरत बन गई, और जयन्त तो चित्र-लिखित-सा खड़ा रह गया! अपरिचित आँखें टकराईं। शारदा अपनी संज्ञा भूल गई, और जयन्त ने देखा, यह क्या कोई स्वप्न है?

शारदा को अपनी आँखों पर विश्वास न हुआ। एक दिन, रामायण में से एक चित्र को पाकर उसकी आँखों से आँसू निकल पड़े थे। यह वही तो है! वे ही आँखें, वैसी ही मुस्कराहट, वैसी ही भव्य आकृति!

और जयन्त ने देखा, रूप अपने चारों ओर एक करुणा समेटे साकार है! जयन्त के हृदय में एक धक्का लगा, और करुण कण्ठ से वह बोल सका—"नमस्ते भाभी!"

'भाभी!' स्वर जैसे किसी वीणा के कोमल तारों से झंकृत हुआ हो! शारदा खो गई। उत्तर में कुछ न कह सकी। कपोलों पर एक हलकी लाली दौड़ गई।

ऊपर से माधव ने पुकारा—"क्यों जयन्त, दरवाजा नहीं खुला?"

दोनों की तन्द्रा भंग हुई। वे लौटे।

जयन्त आकर चुपचाप कुरसी पर बैठ गया। शारदा रसोई-घर में चली गई।

"क्यों जयन्त, तुम्हें भाभी पसन्द आई?" माधव ने मुस्करा कर पूछा।

गले की आवाज़ को स्वाभाविक बनाने का प्रयत्न करते हुए जयन्त बोला—"हाँ!"

"अच्छा किया, तुम आ गये। आज इतवार की छुट्टी है। गप्पें होंगी, क्यों?"

जयन्त ने उत्तर में मुस्कराने का प्रयत्न किया।

माधव एक गिलास और बोतल निकाल लाया। मुस्करा कर पूछा—"एकाध पेग लोगे?"

आशय समझ कर जयन्त ने मुस्करा कर कहा—"नहीं, मैं नहीं पीता।"

"तब क्या खाक युनिवर्सिटी में पढ़ते हो? क्यों जी, तुम भी क्या गांधी-वांधी के चेले हो? मुझे तो मुँह धोने के बाद एकाध 'पेग' जरूर चाहिए। न पीऊँ तो ऑफिस का काम ही न कर सकूँ!"

उत्तर में जयन्त सिर्फ मुस्करा दिया।

'पेग' चढ़ाकर माधव बोला—"देखो जी! यह अच्छा मजाक रहा! जिस दिन तुम्हारी शादी की तारीख थी, उसी दिन मेरी शादी की भी थी। नतीजा यह हुआ कि न मैं तुम्हारे ब्याह में पहुँच सका और न तुम मेरे ब्याह में आ सके!"

रसोई-घर में शारदा पूरियाँ बेल रही थी, बातें सुनकर वह ठिठक गई।

माधव बोला—"क्यों जी, सुना है किसी नार्मल एडवोकेट की लड़की से तुम्हारी शादी हुई है?"

जयन्त चुप रह गया।

"यह तो तुम्हारा एम० ए० फाइनल होगा ?"

जयन्त ने अन्यमनस्क होकर कहा—"हाँ।"

जयन्त अब तक वह धक्का नही सँभाल पाया था। उन्हीं दो आँखों के विषय में वह सोच रहा था, जो उसकी सारी चेतनता को हिला गई है। वे आँखें जयन्त के हृदय मे उतर गई थीं। आँखो की भाषा को आँखो ने पढ लिया था।

माधव सिगरेट बढा कर बोला—"लो, पीओ।"

"नही, मै सिगरेट नही पीता।"

"सिगरेट नही पीते ! अरे, तुम आदमी हो या घनचक्कर ! यूनिवर्सिटी मे रह कर सिगरेट नही पीते !"

जयन्त ने मुस्करा कर कहा—"यूनिवर्सिटी में रह कर सिगरेट पिया ही जाय, यह कोई जरूरी है ?"

"जरूर !" माधव अपनी बात पर जोर देकर बोला—"मैं समझता हूँ, तुम जरूर गांधी-वाधी के चेले हो !"

जयन्त मुस्कराता रहा।

शारदा भीतर से सभी बाते सुन रही थी। कई पूरियाँ जल गईं।

सिगरेट का धुआँ छोड कर माधव बोला—"तुम भी अजीब हो जी ! आजकल के शिष्टाचार तुम नही मानते ?"

जयन्त हलके रूप में खिलखिला पडा। जाने क्यो यह खिलखिलाहट शारदा को बडी मधुर लगी। जयन्त बोला—"यदि ये ही शिष्टाचार है तो निश्चय ही मै इन्हे नही मानता।"

खाना खाने दोनो बैठे। शारदा थालियाँ ले आई। कौर निगलते हुए माधव बोला—"क्यो जी, भाभी से न बोलना भी तुम्हारे शिष्टाचार में है ?"

जयन्त मुस्कराया। शारदा की आँखो से आँखें मिलीं। शारदा की आँखों ने इस मुस्कराहट को देखा। कितनी स्वच्छ मुस्कान थी !

माधव बोला—"आज तुम्हे हम लोगों के साथ सिनेमा जाना होगा ।"

जयन्त चुप रहा ।

खाने-पीने के थोड़ी देर बाद जयन्त ने जाने की इजाजत माँगी ।

माधव ने टोका—"सिनेमा मे साथ देना होगा । कुछ पहले ही यहाँ आ जाना । साथ चलेंगे ।"

"चेष्टा करूँगा ।" कह कर जयन्त आगे बढ़ने को हुआ । एकाएक शारदा की ओर मुड कर बोला—"अच्छा, अब आज्ञा दीजिए ।"

उत्तर मे शारदा के दो जुड़े हाथ 'नमस्ते' के रूप मे उठे ।

आँखे टकराईं । जयन्त ठिठक रहा, फिर आहिस्ते कमरे के बाहर हो गया ।

(४)

अपने कमरे मे आकर जयन्त ने एक गहरी साँस ली ।

बगल के कमरे में ताश का अड्डा जमा है । नरेश, रमेश, चक्रधर, शुक्ल शशाङ्क सभी इकट्ठे मालूम पड़ते हैं । दीवाल के व्यवधान तोड उनके अट्टहास जयन्त के कानों से टकराने लगे । जयन्त अस्थिर हो उठा है । वह कहाँ भाग जाय ? यह सारी हँसी-खुशी, सारा वातावरण ही उसके प्रतिकूल है ।

किवाड उसने कस कर लगा दिये, फिर भी अट्टहास है, जो कोई बाधा नही मानता । उद्दाम यौवन की तरह उसका प्रवाह है ।

वह कुरसी पर बैठ रहा । मन बडा चचल लगा । बेचैनी छाई रही ।

सामने कुछ चित्र है । एक यमुना का चित्र है, जो सम्भवतः 'देवदास' की 'पारू' के रूप में है । दूसरी तस्वीर कानन की है—'विद्यापति' की चंचल 'अनुराधा' के रूप मे । एक ओर मार्क्स की तस्वीर है, दूसरी ओर एक कलेण्डर है ।

चित्रों की ओर उठती नजर देख जयन्त अन्यमनस्क होकर उठ खड़ा हुआ। मस्तिष्क में बहुत कुछ भर गया था। खिड़की के पास आ खड़ा हुआ। दूर, जहाँ तक दृष्टि जाती है, आदमी ही आदमी नजर आते हैं। आदमी व्यस्त जीव है। कर्म से घिर कर वह अपने को सतत जागरूक रखता है। जीवन को वह निश्चेष्ट नहीं देखना चाहता।

'मेस' से कुछ दूरी पर एक नल है। नल पर खड़ी एक युवती है, जो रह-रह कर मुस्करा उठती है। वह एक जवान से बातें कर रही है। युवती को अपने यौवन का मोह है, और वह जवान सतृष्ण नयनों से उसे देखता ही जाता है। दोनों निम्न श्रेणी के व्यक्ति हैं। युवती आँखें मटकाती है, जवान और भी मुग्ध है। धीरे-धीरे युवती घड़ा भर कर इठलाती चली गई। जवान अब भी अपनी आँखों से उसका पीछा कर रहा है।

सम्भवतः यह प्रेम-लीला हो। सम्भवतः जवान अपने हृदय में कुछ हलचल का अनुभव कर रहा हो, वह उसे अपनाने के लिये व्यग्र हो, और युवती उसकी पकड़ में न आ रही हो!

जयन्त अपने छोटे से कमरे में चहल-कदमी करने लगा।.. तो आदमी क्या सचमुच कमजोर नहीं है? वह किसी को घेर कर रखना चाहता है, किसी के श्वासों में खो जाने का अवसर ढूँढ़ता है।

सामने 'देवदास' की 'पारू' है। देवदास की भित्ति क्या कमजोर नहीं है? कलाकार शरत् ने ऐसे निकम्मे, अकर्मण्य पुरुष को अपनी इतनी सहानुभूति क्यों दी? नाली में पड़ा रहनेवाला शराबी तो समाज को दूषित करता है। प्रेम क्या जीवन से बढ़कर है? जीवन अगति का नाम नहीं है: जीवन प्रगति है। बहुत-सी ऐसी समस्याएँ हैं, जिनमें खोकर आदमी अपने को बचा सकता है। और 'पारू' के लिए तिल-तिल कर जान देनेवाला यह देवदास! क्या यह सस्ती भावुकता से खेलने का प्रयास नहीं है?

देवदास की मृत्यु पर लेखक ने कुछ आँसू बहाने को कहा है। किन्तु आँसू बहाने के बदले जयन्त इस भावुकता पर मुस्कराया था। वह जीवन से प्रेम करता है। जीवन को भावुकता से घेर कर वह रखना नहीं चाहता।

'देवदास' के बदले उसने 'शेष-प्रश्न' के कमल को अधिक महत्व दिया है। कमल जितनी प्रखर है, देवदास उतना ही निष्प्रभ। नारी के आँसुओं के बीच जीने वाले शरद् के असंख्य पुरुष-पात्रों से विशेष सहानुभूति वह नहीं रखता।

जयन्त बहुत कुछ सोचता है। सोचना उसका रोग है। और इधर तो सोचने का यह 'मूड' (चित्त वृत्ति) काफी आगे है। विवाह उसके जीवन की गति को इस तरह कुपित कर देगी, ऐसा अनुमान जयन्त को नहीं था।

शादी के पहले किसी लड़की के सम्पर्क में वह नहीं आया। सदा कतरा कर निकलता रहा। फलत. चन्द्रा जब उसके जीवन में आई, तो वह उत्सुकता से आगे बढ़ा। प्रथम बार उसने एक लड़की को इतने समीप से देखा। किन्तु चन्द्रा को देख वह ठिठक गया। इस रूप की तो उसने कल्पना नहीं की थी। चन्द्रा को देख कर उसे लगा, नहीं, यह ठीक नहीं हुआ! चन्द्रा के म्लान, किन्तु सुन्दर चेहरे की ओर देख जयन्त ने सोचा—नहीं इस रूप को तो वह सह नहीं सकता।

जयन्त खुश-दिल प्राणी है। स्वयं हँसता है, दूसरों को हँसाता है। उसे जीवन में हँसी-खुशी चाहिए। हँसी-खुशी को ही वह जीवन मानता है। घोर निराशा के क्षणों में भी उसने हँसना सीखा है।

जयन्त ने पूछा—"तुम सुखी नहीं हो?"

चन्द्रा अपनी भोली और करुण आँखों से देखती भर रही।

"तुम्हारे चेहरे पर यह कैसी छाया है, नहीं समझ पा रहा हूँ चन्द्रा! तुम्हारी मुस्कराहट क्या बनावटी नहीं है?"

चन्द्रा का मुख स्याह पड़ गया।

"कुछ छिपा रही हो न ?"

चन्द्रा का मुख और भी स्याह होता गया।

उस सुहाग-रात के दिन प्रथम बार जयन्त के हँसते मुख पर एक गम्भीरता छा गई।

और कुछ वह नहीं कह सका। बोला—"चन्द्रा, यह एक दुर्घटना है !"

चन्द्रा का पीला चेहरा और भी पीला पड़ गया। कुछ दिन इसी तरह बीते। रहस्य जयन्त नहीं जान सका।

जयन्त का दावा था कि वह किसी तरह के मनहूस व्यक्ति को कुछ ही क्षणों में हँसा सकता है, किन्तु चन्द्रा के विषय में वह असफल रहा। इसी असफलता ने जयन्त की गति को कुण्ठित किया।

जयन्त प्यार लेकर आगे बढ़ा था, ज्यों का त्यों लौट आया। अपनाने की उत्कंठा में वह हँस कर बाहर आया, किन्तु वस्तु देखकर हताश रह गया। यह तो उसकी कल्पना की छाया भी नहीं है !

एक दिन बात साफ हो ही गई। एकाएक, अनजाने, सारा रहस्य खुल गया।

कुछ दिनों बाद जब जयन्त कॉलेज आया, तो रघुराज ने ओठों पर व्यंग्य रख कर पूछा—"क्यों भई, बीबी पसन्द आई ?"

रघुराज की मुस्कराहट को जयन्त देखता रह गया। फिर सँभल कर बोला—"तुम्हारा मतलब ?"

रघुराज पास चला आया। बोला—"मैंने पूछा, तुम्हें बीबी पसन्द आई न ?"

"हाँ !" सूखे गले से जयन्त बोला।

"पसन्द तो आयगी ही ! सुन्दर है ही !"

जयन्त के चेहरे की मुद्रा कठोर हो गई।

रघुराज उसकी मुद्रा देखकर बोला—"अरे भाई ! मेरा कहने का मतलब यह था कि जिस मुहल्ले मे तुम्हारी ससुराल है, मेरा भी घर तो उसी मुहल्ले मे है। तुम्हारी पत्नी को मै लडकपन से जानता हूं !"

रघुराज के स्वर मे व्यग्य अब भी टपक रहा था।

जयन्त ने जरा तीव्र स्वर में पूछा—"तुम कहना क्या चाहते हो ?"

"कहना ?" रघुराज कुछ क्षणों तक जयन्त की ओर देखता रहा; फिर बोला—"कहना कुछ नहीं, तुम्हे बधाई देता हूं।" कहते हुए रघुराज की मुद्रा गम्भीर हो गई। वह आगे बढ़ने लगा।

जयन्त ने इस बार सयत स्वर मे कहा—"रघुराज, सुनो इधर।"

रघुराज के मुख पर करुणा उतर आई। जयन्त उसके मुख को देखकर विचलित हो उठा। रघुराज का हाथ पकड कर वह बोला—"रघुराज, मुझसे कुछ छिपा रहे हो ?"

रघुराज शान्त स्वर मे बोला—"तुम क्या वे सब बाते नहीं जानते ? यूनिवर्सिटी का सबसे तेज लडका क्या अपने घर की बातें ही नहीं जानता ?"

जयन्त अवाक् रह गया।

रघुराज ने एक उच्छ्वास फेक कर कहा—"जाने दो, अब जान कर ही क्या करोगे ?"

जयन्त का धैर्य उसका साथ छोड रहा था। कातर होकर बोला—"रघुराज, तुम मुझे मार डालोगे ?"

"जयन्त, तुम पर मेरी सदा श्रद्धा रही है। तुम्हारा मजाक उडाऊं, इतनी क्षमता मुझमें नहीं है...किन्तु इस एक घटना से मुझे काफी दुःख हुआ है।"

जयन्त स्तब्ध खडा था।

"जिस दिन वर के रूप में तुम्हे वहाँ देखा, मै चकित रह गया। सम्भव है, तुम मुझे नहीं देख सके। मेरी इच्छा हुई कि दौडकर तुमसे

पूछूँ, क्या तुम आग से खेलना पसन्द करते हो ?.. किन्तु जाने किस दुर्बलता ने मेरे पैर रोक लिये।"

जयन्त मूक था।

"किन्तु सोचता हूँ, बात जब एक दिन तुम्हें मालूम ही हो जायगी, तो मैं ही क्यों न अपने दिल के फफोले फोड लूँ...जयन्त, तुम्हारी शादी के साथ एक ऐसी ट्रेजेडी गुँथी है जिसे याद कर मेरी आँखों में आँसू आते हैं . ।"

जयन्त नीरव था।

"चन्द्रा को मैं अच्छी तरह जानता हूँ। लडकपन में उसके साथ खेल भी चुका हूँ। मै उसका 'भैय्या' था। वह जितनी भोली है, उतनी ही अभागिन भी।.. एक दिन न जाने तुम किस विकृत रूप में इस कहानी को सुनो, इससे अच्छा है कि तुम्हें सच्ची बातें मैं बतला दूँ।"

रघुराज चुप होकर कुछ सोचने लगा।

जयन्त ने बैठे गले से कहा—"तुम चुप क्यो हो गए ?"

"सच पूछो जयन्त, तो कहने की इच्छा नहीं होती . किन्तु तुम्हे अंधकार मे रक्खूँ, यह भी मैं नहीं चाहता। आओ, यहाँ घास पर बैठो।"

दोनों बैठ गये।

रघुराज बोला—"तुम्हें अपने दिल को पत्थर करना होगा।"

जयन्त चकित और शकित था।

"बोलो, तुम बरदाश्त कर सकोगे ?"

साँस रोक कर जयन्त ने मुश्किल से कहा—"हाँ।"

"तो सुनो ! तुम्हारी शादी ने अशोक का गला घोंट दिया।"

"अशोक !" जयन्त के मुँह से निकला।

"हाँ, तुम सोचोगे, मैं नाटक का पार्ट सुना रहा हूँ, किन्तु जयन्त, इस अभागे अशोक के लिये मुझे कितनी व्यथा हुई, यह मैं शब्दो मे व्यक्त नहीं कर सकता।"

, जयन्त की छाती धड़क रही थी।

"जयन्त तुम्हारी चन्द्रा एक दिन अशोक के बाहुपाश की अधिकारिणी थी!"

जयन्त के कलेजे में मानो तीर चुभे। तिलमिला कर बोल उठा—"रघुराज. ?"

रघुराज करुण भाव से जयन्त की ओर देख कर मुस्कराया। फिर बोला—"मैं जानता था, इन बातों को सुनने के लिए दूसरा ही हृदय चाहिए खैर, कहो तो बन्द कर दूँ ?"

जयन्त कुछ क्षणों तक रघुराज के मुख की ओर देखता रहा। तब बोला—"नहीं, कहो! मैं तैयार हूँ।"

रघुराज ने कुछ रुक कर कहना शुरू किया—"अशोक गरीब था। वह तुम्हारी चन्द्रा को पढ़ाया करता था। तुम्हारे श्वसुर शहर के नामी एडवोकेट हैं। उनकी एकमात्र सन्तान आधुनिक सभ्यता में पीछे रहे, यह वह नहीं चाहते थे। फलतः उन्होंने अशोक को रक्खा। अशोक बी० ए० में पढ़ रहा था और मुश्किल से अपना गुजर करता था। अशोक मेरा सबसे प्रिय मित्र था। अपनी सभी बातें वह मुझसे अवश्य कहा करता था। एक दिन अशोक ने लजाते हुए मुझे बतलाया—चन्द्रा उसे और वह चन्द्रा को प्यार करने लगा है।"

जयन्त अपने को दृढ़ बना सुन रहा था।

"अशोक और चन्द्रा का रोमांस कई मास तक चला। अशोक ने एक दिन अत्यन्त लज्जित होकर मुझे सूचित किया—चन्द्रा गर्भवती हो गई है!"

एकाएक ही जयन्त को किसी ने चाबुक मारा। चेहरे का रंग एकबारगी उतर गया। अपने को उसने सँभालने की चेष्टा की, किन्तु चोट गहरी थी। जयन्त ने बहुत ही धीमे स्वर में पूछा—"फिर ?".

"मैंने अशोक को सलाह दी कि वह चन्द्रा के पिता को सारी बातें बतला कर चन्द्रा से विवाह करने की माँग पेश करे। उसने ऐसा ही

किया, किन्तु एडवोकेट साहब उसकी बातें सुन कर अवाक् रह गये। क्रोध में लाल होकर उन्होंने अशोक को थप्पड लगाया। अशोक सिर झुका कर सब सहता रहा। इसके बाद एडवोकेट साहब ने अशोक को जूतों से पीट कर बाहर कर दिया...।"

जयन्त मानो उपन्यास की कोई रोमांचकारी घटना सुन रहा हो!

"अशोक ने आकर सारी बातें मुझे बतलाईं। मैंने उसे सान्त्वना दी। दूसरे दिन सुना गया—एडवोकेट साहब अपनी लडकी को लेकर न जाने कहाँ चले गये है! मुझे यह अनुमान करते देर न लगी कि 'कलङ्क' को धोने के लिए वे अपनी लडकी को ले गये है। एक महीने बाद वे लौट आये। चन्द्रा पर पूरी निगरानी रक्खी जाती थी, ताकि वह अशोक से न मिल सके। फिर कुछ ही दिनों बाद सुना गया, मिर्जापुर में चन्द्रा का व्याह होनेवाला है।"

"व्याह के दिन मैने तुम्हे देखा। देखा तो चकित रह गया। मैंने सोचा, आहुति के लिये क्या दो प्राणी काफी नही थे?"

जयन्त तब तक बहुत दूर खो चुका था।

"किन्तु जयन्त अगर तुम चाहो तो चन्द्रा को अपना सकते हो। चन्द्रा के शील पर मै कभी सन्देह नही कर सकता। मुझे आन्तरिक खुशी होगी, यदि तुम उसका उद्धार कर सके..।"

"उद्धार?" जयन्त के मुँह से निकला।

"हाँ, उद्धार! इसके लिए कुछ अधिक त्याग की जरूरत है। यह साधारण आदमी के ऊपर की चीज है। ..जयन्त, अशोक की आत्म-हत्या ने मेरे दिल को जो चोट पहुँचाई, आज उसी की प्रतिक्रिया में मैं ये सारी बातें तुमसे कह सका।"

"अशोक की आत्म-हत्या!" जयन्त की आँखों के सम्मुख कोई चीज नाच गई!

"अशोक भावुक था। जिस समय चन्द्रा वधू बन कर निकली, सुना, अशोक की लाश भी उसी समय बाहर हुई!"

जयन्त बहुत दूर खो चुका था।

"जयन्त, अशोक बड़ा हँसमुख था! ठीक तुम्हारी ही जैसी उसकी आकृति थी किन्तु अभागा था! उसकी बूढ़ी माँ की वह करुण रुलाहट अब भी मेरे हृदय को छेद जाती है, जयन्त!"

रघुराज चुप हो गया।

जयन्त ने देखा, रघुराज की आँखों मे आँसू हैं।

कुछ क्षणों तक दोनों मौन रहे। निस्तब्धता तब टूटी जब नरेश ने आकर कहा—"क्यों जी, तुम लोग क्या षड्यन्त्र रच रहे हो?"

जयन्त ने आकाश की ओर देखा। पश्चिम के आकाश की लालिमा खो चुकी थी और उसके स्थान पर सध्या अपनी कालिमा बटोर उतर रही थी।

(५)

खिड़की से हट कर जयन्त अपनी कुरसी पर आ बैठा। हृदय में जो घाव लगा, वह गहरा था। रघुराज की कहानी ने चित्र के धुँधलेपन को मिटा दिया। चित्र स्पष्ट हो गया था। किन्तु क्या जयन्त इस चित्र को देखने मे समर्थ था?

दूसरी छुट्टी मे जब वह घर गया, तो चन्द्रा से इस विषय मे उसने कुछ नहीं पूछा। चन्द्रा के म्लान मुख को देख, बड़ी व्यथा आई। उसने निश्चय किया, अब वह गम्भीर नहीं रहेगा। चन्द्रा को यह जानने का मौका ही नही देगा कि वह किसी ज्वाला मे दग्ध है। जयन्त ने सोचा—अभागिनी चन्द्रा!

कुछ ही दिनो मे जयन्त को इलाहाबाद फिर लौटना पड़ा। हँसी-खुशी मे उसने अपने को छुपाना चाहा; किन्तु हृदय मे कोई वस्तु बार-बार डक मार जाती थी। अपने को भुलाने के लिये दोस्तो के चकल्लस मे मिला, किताबो में मन को बाँधना चाहा, सिनेमा और मस्ती में डुबकी लगाई; किन्तु सभी प्रयास असफल रहे। जिस तरह एक बूँद

किसी पत्थर से टकरा कर वापस लौट आती है, मन का पंछी भी इधर-उधर उड़ कर वापस लौट ही आता है। सूनी घड़ियाँ काटने दौड़ती हैं। लगता है, मानो यह आत्म-प्रवंचना है। वह किस स्नेह की छाया में जाय? माँ मर चुकी थी। अपना कहने को पिता थे, और एक छोटी बहिन।

× × ×

वह पहले विवाह करना नहीं चाहता था। जब तब विवाह का प्रश्न उठा, उसने कह दिया—"मैं इन झमेलों में अभी नहीं पड़ता।"

किन्तु एक दिन पिता ने झल्लाकर कहा—"तुम ब्याह नहीं करते, और तुम्हारे बिना कान्ति का ब्याह रुका है।'

उसकी बहिन कान्ति का ब्याह उसके बिना क्यों रुका है, यह वह समझ नहीं पाया।

पिता ने बात साफ कर कहा - "तुम बड़े होकर बैठे रहोगे, तो कान्ति का ब्याह कैसे होगा?.. और फिर, कान्ति के ब्याह में भी तो रुपये खर्च होंगे, उतने रुपये आयेंगे कहाँ से?"

सारी बातें सुनकर जयन्त ने शान्त स्वर में कहा—"आपकी मर्जी। अब मुझे कोई आपत्ति न होगी।" कहकर वह चला गया।

उत्तर सुनकर जयन्त के पिता की आँखें खुशी से चमक उठीं। उन्होंने फौरन ही एडवोकेट साहब को तार दिया। ८०००) पर बात पक्की हुई।"

जल्दी न करने से सम्भवतः जयन्त के मन में परिवर्त्तन हो सकता था। फलतः बहुत ही जल्द ब्याह का दिन ठीक हुआ। बारात गई और ब्याह भी हो गया।

जयन्त साधारण भाव से इन सभी बातों को ग्रहण कर रहा था। वह क्या जानता था कि यह विनाश की पृष्ठभूमि तैयार हो रही है!

जयन्त ने आँखें मींच कर सोचा, आदमी के जीवन की छिपी 'ट्रेजेडी' कब, किस कोने से निकल कर चली आयगी, यह कौन कह

सकता है ? जयन्त भाग्यवादी नहीं है। वह 'आइन्सटीन' के युग में पैदा हुआ है: उसने मार्क्स की 'कैपिटल' पढ़ी है। वह ऐसे हलचल के युग में पैदा हुआ है, जब सभी पुरातन संस्कार हिल रहे हैं। धर्म, समाज, श्रेणीभेद सभी में नई रोशनी पड रही है। ऐसे युग में भाग्य पर विश्वास करने की इच्छा नहीं होती। किन्तु कभी-कभी जयन्त प्रतिक्रियावादी भी हो जाता है। सोचता है, क्या सचमुच भाग्य नाम की वस्तु नहीं ? . चन्द्रा जो उसके जीवन में आई, यह क्या भाग्य का खेल नहीं है ?

और आज ! आज जिस मूर्त्ति को वह देख पाया है, उससे तो वह और भी स्तम्भित है। वह अपने आबकारी के दारोगा—माधव भैय्या को जानता है। 'औरत' उनके लिए एक 'खिलौना' है।

एक दिन माधव ने स्वयं कहा था—"अजी, औरतों को पुराने कपड़े से अधिक इज्जत देना मैं पसन्द नहीं करता।"

यह सुन कर जयन्त ठिठक गया था, किन्तु फिर मुस्कराया था। उस मुस्कुराहट का अर्थ था—'माधव भैय्या क्या झूठ कहते हैं ? इस सिद्धान्त को उन्होंने कार्यरूप में परिणत भी किया है ! जब-जब जयन्त उनसे भेंट करने गया, नई-नई सूरतें ही नज़र आई हैं !—माधव भैय्या की पहली स्त्री का बहुत ही धुँधला मुख अब याद आता है। उसकी बेबसी उसकी आँखों से होकर निकलती थी। अपनी उस भाभी को स्मरण कर जयन्त सदा द्रवित हो उठा है। और यह भी एक कारण था कि जयन्त माधव भैय्या से अधिक हेल-मेल बढ़ाने में हिचकता था।

किन्तु आज ?

आज 'भाभी' के रूप में जिस नारी को वह देख आया है, वह तो जयन्त की सारी दृढ़ता को हिला गई है। जयन्त ने देखा—उसका सद्यःस्फुटित रूप, उसकी स्निग्ध आँखें, उन आँखों को भापा। सभी चीजें मानो जयन्त के सम्मुख बिखर गईं। जयन्त को लगा, वह

ऐसी ही मूर्त्ति की खोज में था। ऐसी ही मूर्त्ति की कल्पना उसके युवक-पुरुषों ने एक युग से कर रखी है। जयन्त झुका और उसने पाया कि रिक्त आसन आज भरा मालूम पड रहा है।

जयन्त चौंक उठा। उसने अपने को जागरूक किया। सोचा, क्या वह दुर्बलता के पंजे में अपने को दे रहा है? मन को चेतन करना चाहा। किन्तु मन था, जो न जाने क्यों, एकाएक अनजाने छिटक पडा था। आसन आज भरा था!

जयन्त झल्ला उठा। उठ कर किवाड खोल दिये। ताश का अड्डा टूट चुका था।

जयन्त ने घडी की ओर देखा, पाँच बज चुके थे।

पाँच! जयन्त मुस्कराया! मुस्करा कर उसने सोचा, मैं इस तरह पागल हो जाऊँगा!

स्टोव जला कर उसने चाय का पानी गरम किया। चाय छोडी और जब चीनी की बारी आई तो पाया—चीनी का एक कण भी नहीं है!

अपनी बेवकूफी पर जयन्त बार-बार मुस्कराया। फिर बिना चीनी की चाय ही पीने की चेष्टा की। एक घूँट निगला। अजीब तरह का स्वाद लगा! किन्तु उसने हठ कर लिया—पीऊँगा ही!. और आँखें मूँद कर वह पी भी गया।

पीकर प्याले रखे, कपडे निकाले। साबुन से सिर धोया। बहुत सोचते सोचते सिर गर्म हो गया था।

आईने के सामने खडे होकर जयन्त अनेक तरह से मुँह बनाने लगा। आँखें निकालीं, घूँसा ताना और फिर खिल खिलाकर हँस पडा।

नरेश ने इसी समय कमरे में घुस कर कहा—"क्यों म्यॉं, 'अभिनय' सीख रहे हो?"

जयन्त खिलखिलाकर हँस पड़ा। बोला—"नहीं, पागलों की नकल कर रहा था।"

"क्यों, पागल बनने का शौक चर्राया है ?"

"हाँ जी !" कह कर जयन्त ने कघी उठाई।

नरेश बोला—"कहाँ की तैयारी है ?"

"चलोगे ?" मुस्करा कर जयन्त ने पूछा।

"आखिर कहाँ ?"

"पागलखाने !" कह कर जयन्त खिलखिला पड़ा।

"सो तो लक्षण ही दीखते हैं !" मुस्कराकर नरेश बोला।

कुछ क्षण रुककर नरेश ने कहा—"एक काम से आया हूँ।"

जयन्त ने प्रश्न भरी आँखों से देखा।

"तुम्हारे पास चौन्नी होगी ?"

"नहीं !" निर्विकार स्वर में जयन्त बोला।

"तुम भी दिवालिये निकले !" कह कर नरेश कमरे के बाहर हो गया।

जयन्त रूम बन्द कर बाहर निकल आया। सोचा, आज माधव ने सिनेमा का निमन्त्रण दिया है।

जयन्त सोचने लगा, क्या सचमुच वह माधव के कहने पर जाने को आकुल है ? क्या सचमुच किसी का आकर्षण उसे नहीं खींच रहा है ? दूसरा अवसर होता तो न जाता। किन्तु जब उन दो आँखों की याद आती है, तो मन न जाने क्यों चंचल हो उठता है। . वह क्या सचमुच पागलपन नहीं कर रहा है ? असम्भव और अस्वाभाविक वस्तु को वह क्यों ग्रहण करना चाहता है ?

जयन्त माधव के घर पहुँचा। आवाज दी। शारदा ने आकर दरवाजा खोल दिया। एक बार फिर विचित्र परिस्थिति थी। . वे ही स्निग्ध आँखें ! मुख का धूमिल सौंदर्य किसी चित्रकार के चित्र की याद दिला रहा था।

जयन्त ने अपने को सँभाल कर कहा—"भाभी !"

शारदा गुमसुम खडी थी ।

"माधव भैय्या कहाँ है ? सिनेमा का समय.. ।" कह कर जयन्त अपनी व्यग्रता छिपाने के लिए 'रिस्ट-वाच' की ओर देखने लगा ।

"वे एक जरूरी काम मे कही बाहर गये हैं ।" शारदा की शान्त आवाज आई—"कह गए है, आज सिनेमा जाना नही हो सकेगा ।"

"ओह !" जयन्त के मुँह से निकला ।

आँखे फिर टकराई ।

जयन्त नही सोच सका—वह क्या करे ?

शारदा ने ही शान्त स्वर मे कहा—"आइये ।"

जयन्त चुपचाप भीतर आया ।

दोनो एक दूसरे के सम्मुख बैठे थे । दोनो क्या सोच रहे थे, कौन जाने ?

शारदा के मन में यह जो एक तीव्र आकुलता आ गई है, सो क्य उचित है ? क्या वह नही समझ पाती कि अपने सस्कारो के प्रति यह विद्रोह है । बचपन से ही वह जानती आई है, 'पति' ही सब कुछ है इसी भित्ति पर उसका निर्माण हुआ है । किन्तु इस नग्न सत्य को, इस अति-यथार्थ को वह कैसे अस्वीकार करे ? मन मे कुछ उमडता है, कुछ घुमडता है, कुछ चक्कर काटता है । क्या यह आकर्षण, यह खिचाव उसके नारकीय-जीवन को और भी काला नही कर देगी ?

उधर जयन्त अनुभव कर रहा है—मानो किसी प्रबल कामना ने उसके मन को आक्रान्त कर लिया है । यही तो वह मूर्त्ति है ! ऐसी ही मूर्त्ति तो वह अपने हृदय-मन्दिर में स्थापित करना चाहता था ! दीप-शिखा की तरह उज्ज्वल, शान्त और प्रतिपल जलनेवाली यह नारी क्या जयन्त के जीवन को आलोकित कर सकेगी ?

जयन्त समझ रहा है, वह आग मे खेलता है, अँगुलियो से आकाश नापता है, फिर भी क्यो, वह मन्त्र-मुग्ध की तरह, चला आ रहा है ?

अपनी बेचैनी छिपाने के लिए वह बोला—"भाभी, एक गिलास पानी।" शारदा उठकर गई और कुछ ही क्षणों के भीतर गिलास में पानी लेकर लौटी। यह चुप्पी दोनों को खल रही थी। शारदा ने कहा—"जयन्त बाबू ?"

जयन्त ने प्रश्नभरी आँखों से देखा।

शारदा ने मुस्कराने का प्रयत्न कर कहा—"आपकी पत्नी को देखने की इच्छा है जयन्त बाबू!"

जयन्त के मुख पर एकाएक एक व्यथा दौड़ गई।

शारदा ने घबरा कर पूछा—"क्या हुआ आपको ?"

अपने को सँभाल, रूमाल से पसीना पोंछ जयन्त बोला—"कुछ नहीं।" शारदा नहीं समझ सकी, इस प्रश्न ने जयन्त को इस तरह क्यों उद्विग्न कर दिया ?

जयन्त कुछ क्षणों तक मौन रहा। फिर एकाएक बोला—"आपसे एक बात पूछूँ भाभी ?"

शारदा की उत्सुक आँखें उठीं।

"हम दोनों का परिचय बहुत छोटा है, फिर भी यदि मैं एक बात पूछूँ, भाभी, तो आप बुरा नहीं मानेंगी ?"

शारदा ने स्थिर स्वर में कहा—"पूछिए।"

जयन्त बोला—"मुझे माफ करेंगी, भाभी, किन्तु न जाने क्यों माधव भैया के प्रति एक दिन भी मेरी श्रद्धा नहीं हुई।"

शारदा का मुख म्लान हो गया।

"आप मेरी बात से नाराज हैं भाभी ?"

शारदा चुप रही।

"मैं यह पूछना चाहता था, भाभी, कि माधव भैया क्या आपके साथ भी खेल रहे हैं ?"

आशय समझ कर शारदा का मुख और भी स्याह हो गया।

"भाभी, मैं कुछ अधिक बढ गया। इसके लिये माफी चाहता हूँ।" उठकर जयन्त बोला—"यदि कुछ भूल हो गई हो, तो आप अवश्य माफी दें।"

शारदा ने इस बार धीमे स्वर में कहा—"जो आदमी चाहता है, वह क्या पा भी सकता है जयन्त बाबू?"

बात जयन्त के हृदय में उतर गई।

आँखों में गौरव भर कर जयन्त ने शारदा की ओर देखा। इस उम्र में इतना कठोर ज्ञान!

जयन्त उठकर जा रहा था कि शारदा ने किंचित् मुस्करा कर कहा—"किन्तु मेरे प्रश्न का उत्तर तो नहीं मिला जयन्त बाबू!"

जयन्त ठिठक कर खडा हो गया। कुछ क्षणों तक शारदा की ओर देखता रहा। फिर बोला—"उन बातों को जान कर शायद आप खुश नहीं होंगी, भाभी!"

और जयन्त आगे बढ गया।

(६)

जयन्त ने निश्चय किया—नहीं, वह इस रास्ते पर नहीं चलेगा, यह रास्ता बीहड है, मंजिल भी बहुत धुँधली है।

डेरे पर लौटा, तो अपने को बडा क्लान्त पाया। बिजली जला कर कुर्सी पर बैठ रहा। नरेश ने कमरे में घुस कर पूछा—"क्यों जी, अब तक कहाँ भटकते फिरे?"

उत्तर में जयन्त ने थकी आँखों को उठा दिया।

"यह लो, तुम्हारी एक चिट्ठी है। तुम्हारे जाने के बाद नौकर दे गया था।" लिफाफा फेंक कर नरेश लौट गया।

पत्र पढ कर जयन्त पहले तो चौंका, फिर मुस्कराया। इस मुस्कराहट में एक वेदना थी। पत्र में लिखा था, 'चन्द्रा में डाक्टरों ने क्षयरोग के कीटाणु पाये हैं। शायद दूसरा 'स्टेज' है। मैं इसे लेकर 'सैनिटोरियम' जा रहा हूँ। भगवान् की दया, देखें क्या होता है?'

पन ने जयन्त के मस्तिष्क को अस्थिर कर दिया। मन की मुद्रा गम्भीर हो गई। सिर दाब कर जयन्त ने अनुभव किया—उसे भयानक सिर दर्द हो रहा है।

वह आज खाने नहीं गया, सोने की चेष्टा की, किन्तु असफल रहा।

सोचने लगा, आज से कुछ महीने पूर्व की और आज की दुनिया में अन्तर आ गया है। किसी व्यवधान, किसी निर्मम नियति ने उसकी सारी हँसी-खुशी को चूर चूर कर दिया है! दूसरों को गुदगुदा कर हँसाने-वाला मैं जयन्त आज स्वयं इच्छा कर भी हंस नहीं पाता।.. कहाँ गये वे दिन, जब वह बड़ी-बड़ी कल्पनाओं मे डूबा रहता था! दु:ख और दर्द उसके पास नहीं था, थी सिर्फ चाँदनी-सी हँसी, लहरों-सी चुलबुलाहट!...विवाह ने उसके जीवन की गति को चूर-चूर कर दिया! न जाने कैसा व्यंग्य, कैसा कौतुक उसके भाग्य के परदे के भीतर मुस्करा रहा था। वह मुस्कराता आया और उसकी सारी आशाओं, सारी तमन्नाओं पर पानी फेर गया! आज वह लाचार है, बेबस है, दीन है!

इस इतनी बड़ी दुर्घटना को लेकर वह किस तरह अपने मन को स्वस्थ रक्खे? . और यह शारदा .

यह क्या उसके जीवन की गति को और भी कुण्ठित नहीं कर रही है? लड़कियों से वह दूर रहता आया है। कुछ उपेक्षा के साथ, कुछ अपने 'अहं' के कारण वह कभी इनकी ओर नहीं बढ़ा।

किन्तु अब तो पासा पलट चुका है। शारदा की वे दो स्निग्ध आँखें उसके सारे आवरण को छेद कर अन्त:करण में प्रवेश कर गई हैं।

चन्द्रा को वह समझ चुका है। चन्द्रा पर बड़ी करुणा आती है। अबोध लड़की आग के साथ खेली थी। किन्तु खिलाड़ी वह कच्ची रही। ऐसे खिलाड़ी चूकते ही हैं। जयन्त चन्द्रा के लिए कातर है।

दूसरे दिन सोकर उठा, तो मन थोडा हलका था। कल का दिन एक स्वप्न की तरह लग रहा था। जाने क्यों वह अपने में इतना परिवर्त्तन पा रहा है ?

कालेज में साथियों ने आ घेरा। रघुराज से भेंट नहीं होती। उसे रेलवे मे कोई नौकरी मिल गई है, अत उसने पढना छोड दिया है।

चक्रधर ने कहा—"म्यॉ, तुम्हे हम कब से ढूँढ रहे है !"

नरेश ने कहा—"जयन्त, तुम्हे भी एक पार्ट लेना होगा।"

"पार्ट ?"

"हॉ, हिन्दी-साहित्य समिति का वार्षिकोत्सव हो रहा है न, उसमे ही एक नाटक खेलने का आयोजन है।"

जयन्त चुप रहा।

नरेश मुस्करा कर बोला—"हम लोगो ने तुम्हारे मन के लायक पार्ट चुन रक्खा है।"

जयन्त ने उत्तर दिया—"पर, इन दिनो मैं 'मूड' मे नहीं हूँ भई।"

"मूड-वूड की बात छोडो तुम कालेज मेंविशेप योग्यता रखते हो। तुम्हे एक पार्ट लेना ही होगा।"

जयन्त ने सोचा, हर्ज ही क्या है ? अपने दर्द को भूलने के लिये उसे किसी चीज़ में वभना ही होगा।

नरेश मुस्करा कर बोला—"तुम्हारे मन लायक पार्ट हम लोगों ने चुन रक्खा है—पागल का।"

"पागल का !" जयन्त को हॅसी आ गई।

"क्यो तुम्हे यह पसन्द नहीं ? उस दिन आईने में जो नक्लें तुम कर रहे थे, उन्हे देख कर मुझे विश्वास हो गया है कि तुम पागल का बहुत अच्छा अभिनय कर सकोगे।"

जयन्त कुछ देर तक सोचता रहा। फिर मुस्करा कर बोला—"मजूर है !"

और दूसरे दिन से रिहर्सल शुरू हुआ। जयन्त कभी-कभी एकान्त में स्वय हस पड़ता। वह क्या सचमुच पागल होने जा रहा है?

पागल ही तो पा रहा है जयन्त अपने को। लडकपन से ही वह भावुक प्रकृति का रहा है। विद्रोह और विद्रोह .। वह सदा अविश्वास के प्रति विद्रोह करता आया है। एक घटना याद आ रही है। जब वह बच्चा था, माँ उसे एक छोटे से मन्दिर में ले गई थी। वहाँ पत्थर का टुकडा था, जो सिन्दूर से रंगा था। माँ ने कहा—"बेटा, प्रणाम कर।"

किन्तु जयन्त ठिठका रहा।

"प्रणाम कर, यह देवता है।"

किन्तु जयन्त टस से मस नहीं हुआ।

माँ ने सहम कर पूछा—"क्यो रे, प्रणाम क्यो नही करता?"

जयन्त ने अपनी भोली आँखें फैला कर पूछा—"देवता ऐसा ही होता है, माँ?"

"हाँ रे।" माँ ने सहम कर कहा—"तू ऐसी बाते क्यो करता है?"

जयन्त ने दृढ स्वर मे कहा—'यह तो पत्थर का टुकडा है!"

उत्तर सुनकर माँ का चेहरा पीला पड गया था। जयन्त को अपनी स्नेहमयी जननी का वह कातर मुख अब भी दीख पडता है।

विद्रोह की यही भावना लेकर वह स्कूल मे भी गया। उसे एक घटना और याद आयी।

टिफिन की छुट्टी थी। लडको ने पास के बागीचे से चोरी करने का प्रोग्राम बनाया। अमरूद कुछ पक चले थे।

काशी ने कहा—"तू चलेगा जयन्त?"

"नही।" कह कर जयन्त दूसरी ओर मुड गया।

पाँच-छ: लडके थे। वे गये और अमरूद के पेडो पर चढ गये। आपस में छीना-झपटी हुई और सोता रखवारा उठ कर लपका। कुछ भागे और कुछ पकड लिये गये।

न जाने कैसे, उन शैतान लड़कों में जयन्त का नाम भी आ गया था।

मिडिल-स्कूल का हेडमास्टर 'डिक्टेटर' होता है। उसने सभी लड़कों को बुलाया और एक कतार में खड़ा कर दिया। शायद आठ या नौ लड़के थे।

हेडमास्टर कहते—"हाथ फैलाओ।"

लड़का सहम कर, भयभीत आँखों में करुणा भर, हाथ फैला देता।

हेडमास्टर के बेंत अँगुलियों पर निशान छोड़ जाते। लड़का फफक कर रो पड़ता।

हेडमास्टर ने पुकारा—"जयन्त ?"

जयन्त निर्विकार भाव से आ खड़ा हुआ।

"इतने तेज लड़के होकर, तुम भी इन शैतानों का साथ देते हो ? निकालो हाथ।"

किन्तु जयन्त ने न तो कुछ उत्तर ही दिया और न हाथ ही फैलाया।

हेडमास्टर डपट कर बोले—"निकालो।"

जयन्त दृढ स्वर में बोला—"मैं नहीं गया था।"

"झूठ ! सरासर झूठ ! अब तुम झूठ बोलना भी सीख गये हो ?" कह कर हेडमास्टर डपटे—"निकालो हाथ।"

जयन्त ने प्रतिवाद किया—'मैं झूठ कभी नहीं बोलता।"

"गुस्ताख !" और साथ ही 'सड़ाक' से बेंत की आवाज हुई।

जयन्त मौन खड़ा रह गया, न रोया, न चिल्लाया। बेंत शरीर पर पड़ते रहे, किन्तु जयन्त ने मुट्ठी नहीं खोली।

हेडमास्टर चकित हो जयन्त के मुख की ओर देख, बोले—"तू रोता नहीं है ?"

"क्यों रोऊँ ?" उद्धत भाव से जयन्त ने उत्तर दिया।

"नहीं रोयेगा ? कैसे नहीं रोयेगा ?" बेंत और जोर से पड़ने लगे।

किन्तु जयन्त था, जो सचमुच नहीं रोया—नहीं रोया।

हेडमास्टर अवाक् हो, माथे से पसीना पोंछते बोले—"बागी कहीं का !"

जयन्त किसी तरह घर आया। एक हफ्ते तक उसे बुखार रहा, और जब स्कूल जाने का अवसर आया, उसने पिता से कहा—"मैं हरगिज उस हेडमास्टर के स्कूल में नहीं पढ़ूँगा।"

पिता जयन्त की 'जिद' से परिचित थे, फलत उसका नाम दूसरे स्कूल में लिखा दिया।

जयन्त मुस्कराया। लड़कपन की बातें याद आने पर मुस्कराहट आ ही जाती है।

अपने ब्याह की बात सुनकर भी वह विद्रोह करता रहा। बोला—"मैं शादी के झमेले में नहीं पड़ूँगा।"

पिता ने बहुत उपाय किये, किन्तु जयन्त एक इञ्च भी आगे नहीं बढ़ा। किन्तु एक दिन जब पिता की यह दलील आई कि उसके ब्याह के बिना कान्ति का ब्याह रुका है, तो उसका आसन डोल गया। अपनी इस छोटी बहिन को जयन्त सदा दुलार करता आया है। इस भोली और सुन्दर बहिन को पाकर जयन्त बहुत कुछ सुख का अनुभव करता है।

पिता ने उसके मर्म पर आघात किया था। कान्ति का ब्याह इसके बिना रुका है ! उसकी सारी दृढ़ता टूट गई। उसने सिर झुका दिया। विद्रोह पर, स्नेह ने विजय पाई। भाई अपनी बहिन के पथ का रोड़ा नहीं बन सकता। पत्थर भाई मोम बन गया। वह पिघला और पिघल कर बोला—"आप जो करें, मुझे मंजूर है।"

किन्तु...

किन्तु मोम बनता हुआ हृदय क्या यह कभी अनुमान कर सका था कि यह जिन्दगी ही मोम बन जायगी !...आज सचमुच में जयन्त गल रहा है, तिलमिला कर, प्रति पल, प्रति क्षण, दीप की लौ की तरह वह जल रहा है ! इसकी समाप्ति कब होगी, यह कौन कह सकता है ? यह लौ तो निर्वाण की ओर द्रुत गति से दौड रही है !

जयन्त ने सूनी आँखों से अपने को देखा—आज वह सचमुच शून्य है !

× × ×

नियत समय पर नाटक खेला गया। यह एक दुखान्त नाटक था। सुखान्त होते ही होते पासा ऐसा पलटा कि यह दुखान्त में परिणत हो गया। जयन्त ने यद्यपि नायक का पार्ट नही लिया था, तथापि सारे नाटक में वह ध्रुवतारा बन कर रहा। कथानक मे एक पागल का बडा हिस्सा था। इसी को लेकर नाटक का आदि हुआ और इसी को लेकर अन्त भी।

दर्शकों ने तालियाँ बजाई। कितने आँसू ढुलक गये ! पागल के अभिनय ने अनेक की आँखों मे आँसू ला दिये।

नाटक खतम होने पर एक रायबहादुर ने उठ कर कहा—"मिस्टर जयन्त वर्मा को उनके सुन्दर अभिनय के लिए मैं सोने का एक 'मेडिल' प्रदान करता हूं।"

हर्ष की तालियाँ बजी। लडकों ने घेर लिया। नरेश बोला—"क्यों हजरत ! आप तो तैयार ही नही होते थे !"

जयन्त मुस्कराया। यह मुस्कराहट साधारण नही थी। उसमें कुछ अन्तर्हित था, कुछ ऐसा छिपा था जिसको समझने के लिये 'फ्रोयड' और 'एडलर' के मनोविज्ञान को जानने की जरूरत नही थी। किसी की सूक्ष्म आँखें यह परख सकती थीं कि यह मुस्कान उसके हृदय से उमड कर, व्यथा के रूप में उसके अधरो पर छा गई है !

(७)

रसोई-घर मे बैठी शारदा एकटक मे जलती हुई आग को देखती है। आग आग है, जलते हुए अङ्गारे !

इन अङ्गारों को देखकर शारदा सोचती है—क्या ये उसके हृदय मे धधकते अङ्गारों से अधिक तप्त है ?

'पति देवता होता है।'—एक दिन माँ ने विमला को विदा करते समय कहा था।

'देवता !'—शारदा ने भी गिरह बाँध ली।

और देवता का चित्र उस शारदा नाम की लड़की मे ऐसा चिपका था, जिसे वह रोज कल्पना मे देख सकती थी।

अभाव की दुनिया मे शारदा पली थी। अभाव के बीच पलना उसका मानो स्वभाव हो गया था। और इसलिये उसका देवता भी कोई मोटर पर उड़नेवाला देवता नहीं था। वह था शान्त, निर्धन, किन्तु हँसता और खिलखिलाता !

उसने निश्चय किया था—अपने सारे अरमानों को, एक युग की सञ्चित निष्ठा को वह अपने देवता के चरणों में उडेल कर कहेगी—'मै तुम्हारी हूँ देव !'

देवता मानो फूलों की दुनिया से आयगा। आयगा और कहेगा—'देवि, मै तुम्हारी ही खोज में था !'

वह सोचेगी—क्या इतना सुख, इतनी प्रसन्नता दुनिया मे कहीं और भी है ?

दिन गीतों मे व्यतीत होगा, रातें स्वप्नों मे गुजरेंगी। दो प्राणी मिल कर एक नीड़ का निर्माण करेंगे।

दाल जल रही थी। चौंक कर शारदा ने पानी मिलाया। पानी डाल कर मुस्कराई, ऐसी मुस्कराहट वह अपने बाबूजी से ही सीख पाई है।

'देवता' के स्थान पर एक दानव आया। वह आया और उसके स्वप्नों की दुनिया पर एक लात जमा गया। नीड के तिनके बिखर गये। सौन्दर्य के स्थान पर मात्र रह गई कुरूपता ! ऐसी कुरूपता, जिसे देख कर मन 'छि छि' से भर आता है।

'' पति देवता होता है !'' शारदा के मन ने कहा।

'कैसा भी पति हो ?' प्रश्न हुआ !

'हाँ, हिन्दू लडकी का पति देवता होता है, चाहे वह रोगी, कोढी, आवारा या घृणित ही क्यो न हो !'' जवाब मिला।

शारदा ने सहम कर पूछा—'क्या यह जरूरी है कि पति से जबरदस्ती प्रेम किया जाय ?'

हृदय के किसी कोने से उत्तर आया—'अभागी लडकी, तुझे हुआ क्या है ? तेरा आखिर निस्तार ही कहाँ है ?'

शारदा ने सहम कर पूछा—'क्या यह ढोंग नहीं है ? दुनिया को दिखलाने के लिए क्या अपने को धोखा देना ठीक है ?'

'तू बावरी हो गई है यह सदा से ही होता आया है।'

शारदा ने अपनी आँखें बन्द कर सोचा—यह सदा से होता आया है ! यह एक लकीर है, ऐसी लकीर जो प्रत्येक हिन्दू लडकी के कपाल पर खीच दी गई है ! उसे लगा, जैसे यह लकीर एक डोर है, ऐसी डोर जो प्रत्येक हिन्दू लडकी के गले में पडी है।

अङ्गारों पर पानी के छींटे देकर उसने देखा – जलते अङ्गारे शीतल हो चले हैं। शारदा मुस्कराई। सोचने लगी, मै क्यो व्यर्थ की बातें सोचा करती हूँ ? जो बीत गया, सो बीत गया, बीती बातो को याद करने से घाव और भी गहरा होता है। अतीत के लिये व्यथा क्यों ?

और यह वर्त्तमान है वर्त्तमान निष्प्रभ है। भविष्य तो न जाने कितने कुहरे में है।

'पति देवता होता है !''...बार-बार यह वाक्य हृदय से टकरा कर लौट जाता है। इससे वह क्यों नहीं सहमत हो रही है ? पति के रूप

मे, देवता के रूप मे, माधव आ खड़ा होता है ! मन एक भारी वितृष्णा से भर जाता है।

उसके चेहरे पर पाशविकता खेल रही है, ओठो पर वही व्यंग्य है। यह व्यग्य सदा पीछा करता मालूम हो रहा है। जलती लाल आँखो मे क्रूर वासना है। जब वह बोलता है, तो उसके फटे स्वर से माधुर्य की एक बूँद नही रहती। रहती है मात्र शुष्कता—कठोर भगिमा!

वह शारदा को दोनो हाथो से उठा लेता है, उठा कर मुस्कराता है। यह मुस्कराहट एक आबकारी के दारोगा के बिलकुल उपयुक्त है, जिस तरह हरिणी व्याध को देख कर काँप उठती है।

शारदा का अग-प्रत्यग घृणा से जल उठता है। उसका पति अपना दुर्गन्ध भरा मुख शारदा के कपोलो तक लाता है। लाता है और इस कदर चूसता है, मानो वह आम चूस रहा हो!

शारदा ऐसे समय मे मौत की प्रार्थना करती है। मन ही मन वह कहती है—भगवान्! तुम मुझे इस 'देवता' से बचाओ, मै इसे घृणा करती हूँ—अत्यन्त घृणा करती हूं। भले ही मुझे 'सती की श्रेणी' मे मत रखना, मुझे 'नरक' ही देना, किन्तु मुझे इस जीवन से छुडाओ! किन्तु भगवान् भी इस जीवन से न छुडा शायद यही चाहते है कि इन्हीं 'पति-देवता' की पूजा करती रहूँ!

प्यार करना ही होगा!...

इस इतनी बड़ी विडम्बना को लेकर चलना ही आज के हिन्दू-समाज का न्याय है। न्याय, न्याय है। वह कोई भी दलील मानने को तैयार नहीं। विद्रोह करोगे, तो सजा तैयार है। यह सजा एक ऐसी विडम्बना की और सृष्टि करेगी कि विद्रोही स्तब्ध रह जायगा।

शारदा सोचती है—ऐसे विचार तो कभी उसके हृदय में नहीं आये थे। वह तो शान्त प्रकृति की लड़की थी। किन्तु भीतर ही भीतर यह कैसी आग—कैसी ज्वाला उसे जला रही है! ओह . को नहीं सह सकती—नहीं सह सकती!

'पति' को देखकर एक दिन भी उसमें श्रद्धा नाम की वस्तु नहीं उत्पन्न हुई है। हुई है मात्र घृणा। सिर्फ बार-बार वह अपनी आँखें फैला कर सोचती रही है—यही देवता है, यही ?

खिडकी के पास शारदा आ खडी हुई। उसने देखा, तारा अपने नन्हे से शिशु को गोद में लेकर अपने पति को पखा झल रही है। उसका पति दूकान से लौटा है। तारा हँस-हँस कर बातें कर रही है। पति प्रसन्न मुख से खाना खा रहा है। कहता है—"वाह ! आज रायता कितना अच्छा बनाया है ! थोडा और देना।"

खिडकी से शारदा साफ देख रही है, तारा के गालों पर हर्ष मिश्रित लज्जा की एक रक्तिम आभा दौड गई है।

शारदा एक दीर्घ साँस खींचती है। सोचती है, तारा ने जीवन पाया है !

. और एक उसका 'पति' है। पति है जो मात्र विद्रूप करना ही जानता है। एक दिन कहा तो था—"खाना क्या है, सानी है ! आखिर तो एक कगाल की बेटी ठहरी ! ऐसी चीजो से भेंट कहाँ हुई ?"

अपने गरीब पिता का अपमान सुनकर शारदा तिलमिला गई। मन में आया कुछ कहे। किन्तु कह न सकी, दुर्बल जो थी।

वह खिडकी से हट गई।

.. जयन्त का ध्यान आ गया।

'भाभी !'.

वह मुस्कराई। वह 'भाभी' बन गई ! उसे बनना क्या था, और क्या बन गई ! जयन्त के चित्र को देखकर एक दिन आँखो में अनायास आँसू उमड आये थे। वे आँसू क्यो आये थे ? ..कौन जाने, उन आँसुओं का मोल क्या था ?

और एकाएक वह तूफान की तरह उसके जीवन में आ गया। किन्तु हाय, यह तूफान तो मरुभूमि का तूफान है। वह तब आया, जब बन्धनों

ने उसके नारीत्व को जकड़ लिया था। वह तब आया जब खेत को चिड़ियाँ चुग गई थीं।

. .किन्तु उसके प्राणों का यह स्पन्दन ?

वह क्यों नहीं सोच पाती कि जो मृगतृष्णा है, उसके पीछे भटकना कोरी भावुकता है।...समाज के शब्दों में यह 'पाप' है, धर्म के शब्दों में यह 'नरक की ओर बढ़ना' है।

और जयन्त ?

यही तो देखता है। ऐसे ही देवता की प्रतीक्षा में तो वह थी। ऐसे ही देवता की पूजा के लिए तो उसने फूल चुने थे।

किन्तु 'देवता' के स्थान पर 'दानव' मिला। फूल जहाँ के तहाँ सूख गये। पुजारिन की आँखों में आँसू छा गये। उसे लगा, मानो उसका देवता उससे रूठकर न जाने किस प्रदेश में जा छिपा। पुजारिन अकेली पड़ गई, और इस अकेलेपन से फायदा उठाकर एक दानव आया।

वह गुरु-गम्भीर स्वर में बोला—'माला मेरे गले में डाल दो।'

पुजारिन भय, विस्मय और घृणा से स्तब्ध रह गई।

दानव बोला—'इस माला पर मेरा अधिकार है।'

'पूजा जबरदस्ती ली जाती है ?' पुजारिन ने डर कर कर पूछा।

दानव गरज कर बोला—'हाँ, हाँ, यह माला तुम्हें मेरे गले में ही डालनी होगी। लाओ, जल्दी करो।'

स्वर इतना तीखा था कि लड़खड़ा कर पुजारिन बढ़ी, आँखें मींच कर काँपते हाथों से माला दानव के गले में डाल दी।

रुँधे गले से पुजारिन बोल सकी—'यह अन्याय है!'

'बकवास बन्द करो, चलो मेरे साथ।' और दानव ने उसे बलपूर्वक खींच लिया।

शारदा ने घुटने में मुँह छिपा लिया छिपा कर सिसक उठी। आँसुओं का वेग हृदय को लाँघ गया। मन में बड़ी पीड़ा हुई।

और इसी समय माधव की गम्भीर आवाज आई—"क्यों जी, तुम्हारे ये क्या रंग-ढंग हैं ? खाना क्यों नहीं भिजवाया ?"

चौंक कर शारदा ने सिर उठाया। अभी उसे ख्याल आया कि एक भयानक भूल उससे हो गई है। थोड़ी दूर ही शराब की दूकान है। वहीं उसका पति खाना खाता है। शारदा को नौकर के हाथ से ठीक बारह बजे वहाँ खाना भिजवाना होता है।

"खबरदार जो कल से ऐसा हुआ . दो बजते हैं। आगे ऐसी भूल हुई तो हण्टर से खबर लूँगा।" और तेजी के साथ माधव चला गया।

(८)

जीवन की व्यस्तताओं के बीच रहकर आदमी अपना दर्द बहुत कुछ भूल जाता है। जयन्त ने भी निश्चय किया कि वह सिर्फ पुस्तकों में रहेगा। उसकी पढ़ाई खतम होने को सिर्फ तीन महीने है। किसी तरह इस जीवन को वह काटना चाहता है।

जयन्त पढ़ता कम है। कम पढ़कर भी वह वजीफा लेता आया है। प्रोफेसरों में उसकी इज्जत है। लड़के स्पर्द्धा की आँखों से उसे देखते हैं।

तीन महीने और है। इसके बाद वह संसार में प्रवेश करेगा। किन्तु जयन्त सोचता है, यह उसके जीवन में कैसी प्रतिक्रिया हो रही है ? वह क्यों 'निराशावादी' होता जा रहा है ? जीवन और यौवन के द्वार पर जो रंगीन परदे हैं, आज वे स्याह लग रहे हैं। लगता है, जैसे किसी के निष्ठुर हाथों ने उसके ओठों की सहज सुन्दर मुस्कान छीन ली है, किसी ने उसकी आशाओं पर एक घातक प्रहार किया है। आज का जयन्त वह जयन्त नहीं रह गया है, जो अत्यन्त भावुक था, जो लम्बी और ऊँची कल्पनाएँ कर सकता था।

वे सारी कल्पनाएँ आज तिरोहित हो चुकी हैं। रह गया है मात्र शुष्क ठूँठ।

वे दिन कहाँ गये जब वह सरगरमी के साथ पीड़ित जनता की ओर झुका था। गाँवों मे घूमता, मज़दूरों की बस्तियो में चक्कर लगाता, भिखारियों के टोले में ज़ाकर उनकी स्थिति का अध्ययन करता।

वह अपने साथियों से कहता—"समाज की इन विषमताओं को हमें नष्ट करना ही होगा। हम युवक हैं। हमारी रगो मे जवानी का खून है। यदि हम इन विषमताओं को रहने देते हैं, तो यह हमारी कायरता है। पूँजीवाद वह अजगर है, जो क़िसानो को डस रहा है, मज़दूरो को निगल रहा है और मध्यम श्रेणी के लोगो को नष्ट कर रहा है। इस अजगर को मारना हमारा कर्त्तव्य है। यह मानवता का नाश कर रहा है। मानवता आज चीखती है। सभ्यता ने अपने मुख पर काला परदा डाल लिया है। सामन्तवाद, साम्राज्यवाद और नाज़ीवाद इसी अजगर के ज़हरीले दाँत है। इन ज़हरीले दाँतो को तोडो! मार्क्स ने इस ज़हर को रोकने के लिए नश्तर प्रदान किया है, लेनिन ने उस नश्तर को अजगर के पेट मे चुभोया है! किन्तु अजगर अजगर है! लेनिन के प्रयोग से सिर्फ एकबार यह घबराया है। बाकी काम हमारा है। संसार के हम तरुण इस अजगर को नहीं रहने देंगे। सभ्यता और संस्कृति, प्रजातन्त्र और स्वतन्त्रता के नाम पर पूँजीवाद के पिशाच सभ्यता की आँखों मे धूल झोंकते है।

"एक ओर देखो, खाने को अन्न नहीं, पहिनने को वस्त्र नहीं। दूसरी ओर देखो, उन गगनचुम्बी अट्टालिकाओं की ओर। बिना हाथ-पैर हिलाये, बिना परिश्रम किये, मोटर और वायुयानों पर सैर करने वाले ये सामन्त! ये राजे महाराजे, ये मिल-मालिक और पूँजीपति सभी सभ्यता और संस्कृति के नाम पर जनता का गला घोंटते आये है। ये समाज के लिए अभिशाप हैं, अभिशाप! इन्हे रोकना अत्यावश्यक है।"

उसके साथी मुस्करा कर कहते—"क्यो, तुम स्पीच दे रहे हो या हम लोगों से बातें कर रहे हो?"

स्वर को अपेक्षाकृत नरम बना, मुस्करा कर जयन्त कहता—'भाई मेरे, तुम क्या इन ज्यादतियों का अनुभव नही करते ?"

जयन्त ने तब निश्चय किया था, अपने को वह एक हथियार साबित करेगा। वह लडेगा, अन्त तक लडेगा! गुलामी घृणा की वस्तु है। गरीबी अभिशाप है! वह दोनों के विरुद्ध लडेगा।.. गुलाम और गुलाम बनाने वाले दोनों सभ्यता के शत्रु हैं। गुलाम होना गुनाह है। और जो गुलामी कायम रखना चाहते है, वे नरपिशाच हैं। इन नरपिशाचों के साथ थोडी भी रियायत करना उनके गुनाह को कम करके देखना है...।"

जयन्त मुस्कराया। इस तरह से मुस्करा देने का वह अभ्यस्त है। किन्तु आज ?

आज लगता है, जैसे जयन्त अपनी सारी विचार-शक्ति खो बैठा है। हृदय में विद्रोह नही होता, अन्याय देखकर वह मौन रहना सीख रहा है। जीवन की यह प्रतिक्रिया, यौवन का यह परिवर्तन आज जयन्त को भुलसा रहा है। दो लडकियाँ उसके जीवन को घेर कर बैठ गई हैं। एक है चन्द्रा, समाज और धर्म की दृष्टि में उसकी धर्मपत्नी! दूसरी है शारदा, जो 'भाभी' के रूप में प्रकट हुई है। चन्द्रा ने आकर उसके जीवन की हँसी-खुशी मे आग लगा दी। अभागिनी स्वय जल रही थी, उसे भी जला गई।. जयन्त ने सोचा, चन्द्रा अपने साथ कीटाणु लाई, जिसके कारण उसकी स्वस्थ हँसी रुग्ण हो गई। आज उसकी मुस्कराहट में और जो हो, स्वच्छता नहीं है।. .और वह हत भागा अशोक...

सम्भवत. अशोक बहुत ही भावुक था। भावुक होकर वह ससार की विषमताओं के बीच आया था। अपनी भावुकता मे वह बह गया, अपने को उसने भावुकता के ऊपर नहीं रक्खा। उसने आत्महत्या के आवरण में अपने दुःख को छिपाया। यह तो 'देवदास' की-सी कायरता

है। देवदास की अकर्मण्यता को जयन्त कभी भी क्षमा नहीं कर सकता। एक दिन जो पार्वती सारे मान-अपमान को भूल उसके चरणों में आश्रय की भीख माँगने आई थी, हतभागे देवदास ने तब अपने चरण समेट लिये थे। और जब मानिनी पार्वती आघात से तिलमिला गई, तो उसका नारीत्व प्रतिशोध लेने को तत्पर हो गया। वह उठी और चली गई। वह पार्वती थी। भीतर से रोकर भी ऊपर से हँसी थी।

अशोक अपने भीतर हिम्मत क्यों नहीं बटोर सका? भावुकतावश उसने जान दे दी! जान देना आसान काम है, घुल-घुल कर गलना कठिन। अशोक के इस प्रकार प्राण देने पर उसकी प्रशंसा नहीं कर सकता। चन्द्रा को पंजे से छुड़ाने की शक्ति उसमें थी। झूठी इज्जत पर ठोकर मारने की चेष्टा उसने क्यों नहीं की। कोरी भावुकता में आकर वह आत्महत्या कर बैठा। सोचा होगा, यह एक आदर्श है।

जयन्त ऐसे आदर्श को कभी प्रश्रय नहीं दे सकता। यह तो पलायन है—कायरता है! देवदास को भी उसने क्षमा नहीं किया।

.. इन आघातों के बाद ही उसने शारदा को देखा। देखा और देखकर अवाक् रह जाना पड़ा। नियति क्या सर्वत्र परिहास करना ही जानती है?...आबकारी के दारोगा अपने माधव भैय्या, के घर शारदा को पाकर उसे विधाता के विधान पर मुस्कराहट आई। वह मुस्कराया; वैसी ही मुस्कान, जैसी वह चन्द्रा के अतीत को जान कर मुस्कराया था।

उसके माधव भैय्या एक ऐसे किस्म के आदमी है जो शत-प्रति-शत 'मौलिक' है। जो वे कहते है, उसे बिना हिचकिचाहट के कर भी डालते हैं। अगर नहीं कर पाते, तो उनकी त्योरियाँ चढ़ती है, उनकी भौंहे (जिनमें निश्चय ही आबकारी के दारोगा की कुटिलता छिपी है) टेढ़ी हो जाती है, और अन्त में 'पेग' चढ़ा कर वे अपनी दृढ़ता को दुहराते है।

प्रभा और नलिनी जयवन्त, लीला चिटनीस और वनमाला की तुलनात्मक आलोचना-प्रत्यालोचना में अब बारह नहीं बजते, और न मुक्त छन्दों (Blank-verse) में की हुई अपनी प्रगतिशील कविताएँ ही 'शशांकजी' सुनाते हैं। आजकल ये बड़ी सरगरमी से लड़कों से नोट्स माँगते नजर आते हैं। आज ही वे जयन्त के पास आकर बोले— "क्यों भई, आपके पास 'The Psychology of Poet Shelley' (कवि शैली का मनोविज्ञान) नाम की किताब है ?"

जयन्त उनकी मुद्रा देख कर हँस पड़ा। बोला—"किताब तो है ही। ले जाइयेगा। पहले जरा अपना 'प्रलय-गीत' तो सुना दीजिये ..।"

कविजी मुस्करा कर बोले—"मरने की भी फुर्सत नहीं है, जनाब इस बार भी देखता हूँ, गच्चा खाना पड़ेगा।"

'शशांकजी' दो बार डुबकी लगा कर खाली हाथ लौट आये हैं अर्थात् 'फेल' हो चुके हैं। इस बार भी अधिक आशा नहीं है, उनके कहने का यही तात्पर्य था।

जयन्त मुस्करा कर बोला—'मैं आपको Hints (संकेत) दूँगा। सफलता की आशा रखिए।"

'शशांकजी' उछल पड़े। बोले—"तब क्या कहने हैं भई ! .. मैं मरते-मरते जी जाऊँगा। आपको तो 'फर्स्ट क्लास' में आना है .. यहाँ तीसरी डुबकी लगा कर तीसरे दर्जे का 'पासपोर्ट' चाहता हूँ।"

'शशांकजी' पुस्तक लेकर चले गये। सचमुच परीक्षा ने उनके 'मूड' को बिगाड़ रक्खा है !

··जयन्त उठ खड़ा हुआ। चाय की आखिरी प्याली तैयार की। रात काफी जा चुकी थी। घड़ी में देखा, तो दो बज कर ग्यारह मिनट हो रहे थे। सर्वत्र सन्नाटा था। बाहर घोर अंधकार। बिजली की हलकी बत्तियाँ उस घने अन्धकार को छेद नहीं कर पाई थीं।

जयन्त खिड़की के पास आकर खड़ा हो गया। घने अन्धकार को अन्यमनस्क सा देखता रहा। सम्भवतः वह सोच रहा था, क्या मेरे हृदय में भी ऐसा ही अन्धकार नहीं छा गया है ?

(६)

भुवाली-सेनटोरियम के एक रूम में पड़ी चन्द्रा अपने अतीत और वर्तमान को धुँधली आँखों में तौल रही है। चन्द्रा जानती है कि वह मृत्यु की गोद में बैठी है। तिल-तिलकर उसके जीवन-दीप की लौ जल रही है। प्रभात का एक हलका झोंका इस लौ का अन्त कर देने के लिए पर्य्याप्त है। इन कुछ ही महीनों में लगता है, मानो चन्द्रा नाम की लड़की एक दूसरी लड़की हो गई है। चंचल और हँसमुख, वाचाल और फुर्तीली चन्द्रा के स्थान पर एक ऐसी लड़की है जो मात्र हड्डियों का ढाँचा लेकर, अवसन्न, निराश और क्लान्त है।. अपनी धुंधली आँखें फैलाकर जब वह देखने का प्रयास करती है, तो देखती है कि उसके अगल-बगल में अधिकांश ऐसे ही प्राणी हैं, जो मृत्यु की प्रतीक्षा कर रहे हैं।. .चन्द्रा को अब मृत्यु प्यारी लग रही है। इस निर्भय जगत् से मृत्यु की गोद सुखद और शीतल लगती है। अब वह निश्चिन्त है। अब वह जानती है कि उसकी शान्ति भंग नहीं हो सकती।

चन्द्रा की धुँधली आँखें भरती गई।..रह-रह कर सभी दृश्य नाच रहे हैं

तब चन्द्रा पन्द्रह साल की थी। नौवीं क्लास का इम्तहान बहुत नजदीक था। पुराने मास्टर ने अपनी लम्बी बीमारी के कारण इस्तीफा दे दिया था। नए मास्टर की खोज हुई। पिता आधुनिक सभ्यता में पले शहर के नामी एडवोकेट थे। उन्होंने एक दिन कहा—"चन्द्रा, तेरा मास्टर आज से पढ़ाने आयगा।"

चन्द्रा नए मास्टर को देखने के लिए जरा भी उत्सुक नहीं थी। उसकी कल्पना में मास्टरजी का वैसा ही चित्र था—अधपकी मूँछें, चाँद

के बाल गायब, आँखों पर पुराना चश्मा, बन्द गले का काला कोट, हाथ में घड़ी और चेहरे पर गम्भीरता।

किन्तु जब वह ड्राइङ्ग रूम में गई, तो ठिठक गई। वहाँ जो उसने देखा तो चकित रह गई। यह तो मास्टरजी का स्वरूप नहीं था!

चन्द्रा ने देखा, मास्टरजी की मसें अभी भीज रही हैं; गोरे चेहरे पर दो बड़ी उदार और प्यारी आँखें हैं, सिर के केश अस्त-व्यस्त हैं, मुख पर एक मृदुता है, खद्दर की साफ कमीज में वे खूब फब रहे हैं। चन्द्रा को न जाने क्यों 'ये' मास्टरजी बड़े अच्छे मालूम हुए।

कुछ देर तक उन्होंने भी चकित होकर देखा, फिर आहिस्ते बोले—"आओ!"

मास्टरजी ने किताबें उलट-पलट कर देखीं। अपने मुख पर गम्भीरता लाने की जो चेष्टा की तो चन्द्रा का मन खिलखिला पड़ने को हुआ। इस उम्र में गम्भीरता! बीस-इक्कीस वर्ष के मास्टरजी अपने चेहरे पर गम्भीरता नहीं ला सके।

सिर झुका उन्होंने एक किताब खोल कर देखना शुरू किया। फिर चन्द्रा की ओर देख उन्होंने प्रश्न किया—"पानीपत की तीसरी लड़ाई किस सन् में हुई थी?"

चन्द्रा चुप रही।

"इङ्गलैण्ड के इतिहास में जैकोबिन्स कौन थे?"

चन्द्रा मौन रही।

मास्टरजी झल्ला कर बोले—"जवाब क्यों नहीं देती?"

चन्द्रा फिर भी चुप रही।

"अरे भाई, कुछ तो बोलो। जानती हो या नहीं?"

चन्द्रा बड़ी मुश्किल से उत्तर दे पाई—"याद नहीं।"

मास्टरजी फिर अपने मुख पर गम्भीरता लाने की चेष्टा करने लगे। चन्द्रा की इच्छा हुई, वह खिलखिला कर हँस पड़े! हँसी को उसने दाब लिया।

मास्टरजी गम्भीर स्वर में बोले—"ऐसे काम नहीं चलेगा। पढ़ाई इस तरह नहीं होती। ऐसी याददाश्त रखने से आदमी इम्तहान नहीं पास कर सकता।"

मास्टरजी ने सिर उठाया, आँखें मिली, मिली और टकराईं। हाय! आँखों का यह मिलना ही तो दुर्भाग्य का पहला परिच्छेद बन कर रहा।

थोड़ी देर बाद मास्टरजी चले गये।

मास्टरजी के चले जाने के बाद चन्द्रा को बड़ी लज्जा आई। लज्जा से उसका गोरा मुख लाल हो गया। क्यों लाल हुआ? चन्द्रा का मुख क्या इसके पहले कभी इस तरह लाल हुआ था?

दूसरे दिन मास्टरजी आते। वही क्रम चला।

"सोने की खाने कहाँ-कहाँ पाई जाती हैं? . बर्मिंघम किस लिए मशहूर है? स्वेज नहर का क्या महत्व है?"

चन्द्रा ने तय किया था, अब वह प्रश्नों का जवाब देगी। कल जानबूझ कर उसने कह दिया था—याद नहीं। और मास्टरजी गम्भीर हो गये थे। और गुस्से में कहा था—'पढ़ाई इस तरह नहीं होती। ऐसी याददाश्त रखने से आदमी इम्तहान नहीं पास कर सकता।'

मास्टरजी की गम्भीरता और झुँझलाहट कितनी अच्छी लगती है।

चन्द्रा ने सोचा, मास्टरजी भी कभी कभी अन्यमनस्क होकर मेरे चेहरे की ओर देखने लगते हैं। तब मेरा चेहरा लाल हो उठता है। पर लाल क्यों हो उठता है?...

पिताजी से कुछ बातें मालूम हुईं। नाम अशोक है, गरीब हैं। यहीं के कालेज में बी० ए० में पढ़ते हैं। पढ़ाई का खर्च नहीं जुटता, इसलिए ट्यूशन करते हैं।

मास्टरजी की गरीबी का हाल जानकर चन्द्रा को दुःख हुआ। क्यों दुःख हुआ? दुनिया में बहुत से आदमी गरीब हैं। चन्द्रा ने सुना है, हिन्दुस्तान में ऐसे करोड़ों आदमी हैं, जो एक बार खाकर ही

जीते है ! उनके पास इतने पैसे नही कि दूसरे वक्त का खाना खरीद सकें। फिर चन्द्रा को क्यों दुःख हुआ ? चन्द्रा का माली गरीब है, नौकर गरीब है, और मनिया दाई भी तो गरीब है। इसकी गरीबी सोच कर चन्द्रा कभी दुखी नहीं हुई। फिर मास्टरजी की गरीबी जानकर क्यों दुःख हुआ ?

दिन बीतने लगे। चन्द्रा ने पाया, मास्टरजी उसे और भी अच्छे लगने लगे है। मास्टरजी जब मुस्कराते हैं, तो न जाने क्यों, चन्द्रा का मन भी मुस्करा उठता है। क्यो ऐसा होता है ?

तो क्या यह आकर्षण 'प्रेम' है ? सिनेमा और उपन्यासो में उसने प्रेम को देखा और पढा है। यह वैसा ही प्रेम तो नही है ? रोज ऐसा ही अनुभव होता है। मास्टरजी के चेहरे पर भी अब लज्जा आने लगी है।

एक दिन वे बडी देर तक चन्द्रा के मुख को निर्निमेष दृष्टि से देखते रहे। चन्द्रा की आँखें जब टकराईं, तो वे परेशान से लगे। लडखडाते स्वर मे बोले—"चन्द्रा !"

पहली बार अपने नाम का काँपते स्वर में उच्चारण सुनकर चन्द्रा के सारे शरीर में विद्युत दौड गई। उसे लगा, मानो किसीने अपनी कोमल अँगुलियो से वीणा के तारों को छू दिया है।

मास्टरजी इसके बाद और कुछ नही कह सके।

चन्द्रा ने अपने हृदय में एक गति का अनुभव किया। उसे लगा, जैसे जीवन के सारे फूल प्रभात में खिल गये हैं। अरमानो की दुनिया में एक हलचल आ गई है ! वह क्यों खुश हुई ?

उस दिन चन्द्रा ने पियानो पर एक गीत गया था।

विद्यापति की इन पंक्तियों को गाते समय वह सिहर उठी थी —

सखि की पूछसि अनुभव मोय
सोई पीरिति अनुराग बखानिते

तिले तिले नूतन होय

'जनम अवधि हम रूप नेहारलू

नयन ना तिरपित भेल.

माँ के पुकारने पर पियानो बन्द कर वह गुनगुनाती चली—

आजू रजनी हम भागे पोहायनू

पेखलूं पिया मुख चन्दा

जीवन यौवन सफल करि मानलूं

दशदिश भेल निरदन्दा.. '

ये सारे गीत उसने अपनी माँ से सीखे थे। माँ का नैहर मिथिला में था।

चन्द्रा के मुख की ओर देख माँ बोली—"आज तू बड़ी खुश है, चन्द्रा ! बात क्या है ?"

प्रश्न सुनकर चन्द्रा लजा गई थी। उसे अपनी उच्छृंखलता पर लज्जा आई। भाव छिपा कर बोली—"बाबूजी ने आज मुझे नए 'डिजाइन' के ईयररिङ्ग खरीदने का वचन दिया है, माँ !"

"तो इसमें इतनी उछलने की क्या बात है री लड़की ! इतनी बड़ी हो गई, किन्तु अब तक लड़कपन नहीं गया ?"

चन्द्रा माँ के गले से लिपटकर बोली—"तू कितनी अच्छी है, माँ !"

चन्द्रा ने इम्तहान पास कर लिया। क्लास में वह 'फर्स्ट' आई। पिता नतीजा सुनकर बड़े खुश हुए। मास्टरजी से बोले—"तुम्हारे परिश्रम से मै खुश हूँ, अशोक ! इस साल तुम चन्द्रा को 'मैट्रिक' करा दो।"

चन्द्रा ने स्पष्ट देखा, मास्टरजी के चेहरे पर जो एक आशका थी, वह दूर हो गई। मास्टरजी का मुख प्रसन्नता से खिल उठा। उत्तर में उन्होंने सिर झुका लिया।

पढ़ाई फिर से चलने लगी। पढाई कम होती; व्यर्थ की बातें अधिक।

पिताजी को मानो गोली लगी। उन्हें अपने कानों पर विश्वास न हुआ। पूछा—"क्या कहा तुमने ?"

अशोक ने उसी शान्त स्वर में कहा—"हम एक दूसरे को चाहते हैं। हम दोनों में ब्याह होना जरूरी है।"

"जल्दी !" चन्द्रा के पिताजी की भृकुटि तन गई। उनका क्रोध उमड आया। बोले—"आज तुम नशा खाकर आये हो ?"

"जी नहीं, मैं नशा कभी नही खाता। मैं आप से सच्ची बात कह रहा हूँ।"

पिताजी उठ कर खडे हो गये। अशोक को घूरते हुये बोले—"तुम भी खद्दर के नीचे हैवान निकले !"

अशोक ने कुछ उत्तर नहीं दिया।

"मैं नहीं जानता था कि तुम इतने नीच हो !"

अशोक निर्विकार भाव से बैठा रहा।

"तुम्हारी यह मजाल !" पिताजी की मुट्ठियाँ तन गईं। नथुने फूल उठे। आकर उन्होंने एक तमाचा अशोक के गाल पर जमाया। बोले—"चन्द्रा को तुम बहकाना चाहते हो !"

अशोक फिर भी शान्त रहा।

पिताजी गरज कर बोले—"निकलो तुम अभी . अभी यहाँ से निकलो . नहीं तो हण्टर से खाल उधेड दूँगा !"

चन्द्रा किवाड के पल्ले के पीछे मूर्च्छित-सी हो रही।

"मैं कहता हूँ निकलो.. निकलो यहाँ से !"

अशोक ने दृढ़ स्वर से इस बार कहा—"किन्तु यह ब्याह जरूरी है। इसे होना ही चाहिये।"

पिताजी के क्रोध का पारा और भी चढ गया, बोले—"होना ही चाहिये . !"

अशोक लडखडा कर बोला—"आप बात नहीं समझ रहे हैं .. चन्द्रा को गर्भ...!"

"क्या ?" पिता का चेहरा एकाएक ही काला पड़ गया। हाथ से चश्मा छूट कर पत्थर पर चूर-चूर हो गया। वे गिरते-गिरते बचे, फिर अशोक को एक लात जमा कर बोले—"निकल चाण्डाल.. निकल यहाँ से ..नहीं तो तेरा गला घोंट दूँगा।"

चिल्लाहट सुन कर माँ भीतर के कमरे से आ गई। पिता का चेहरा भयंकर रूप से फिर लाल हो उठा।

अशोक उठकर चुपचाप फाटक के बाहर हो गया। यदि वह किवाड़ के पल्ले की ओर देखता, तो वहाँ मूर्च्छित चन्द्रा को भी देख पाता।

यों तो चन्द्रा के पिता एक सज्जन पुरुष हैं, किन्तु अपने पर आघात वे नहीं सह सकते। प्रतिशोध लेने की प्रवृत्ति भी प्रबल मात्रा में है। कुछ घण्टे बाद जब चन्द्रा को होश आया, तो अपने पिता की तीक्ष्ण आँखों को अपने मुख पर पाया।

पिताजी उस दिन कुछ नहीं बोले, चुपचाप लौट गये। दूसरे दिन बिना भूमिका के बोले—"चलो, बाहर चलना होगा। गाड़ी का समय हो गया।"

चन्द्रा का कलेजा भय से काँप उठा। किन्तु बिना कुछ बोले वह चली गई।

. और एक दिन कलकत्ते के एक बन्द कमरे में क्लोरोफार्म सुंघा कर लेडी डाक्टर द्वारा जो किया गया, इसके स्मरण मात्र से ही चन्द्रा के रोंगटे खड़े हो जाते हैं!

चन्द्रा को आशंका हो रही थी। एक बार साहस कर उसने पूछा भी—"पिताजी, मुझे यहाँ किस लिये लाया गया है?"

पिताजी ने तीक्ष्ण आँखों से घूर कर कहा—"चुप रह निर्लज्ज। अब क्या चाहती है?"

चन्द्रा को इसके बाद और कुछ पूछने का साहस नहीं हुआ।

किन्तु जब उसकी चेतना लौटी, तो वह सारी बातें समझ गई। हाय, उसके मातृत्व को किसी ने निर्मम हाथों से उखाड़ फेंका था!

खेलती है। आँखें स्निग्ध और उज्ज्वल हैं। ओह, ये तो ठीक 'मास्टरजी' की तरह लगते हैं!

चन्द्रा ने सोचा, यह कैसी प्रवञ्चना है! इस अभागे पति को क्या मालूम कि मैं उसके जीवन में अभिशाप लेकर आ रही हूँ! उसको क्या मालूम कि पत्नी के रूप में वह एक जीवित मुर्दा ही पायगा - जिसमें सिर्फ देह-देह है! हृदय नाम की वस्तु तो है ही नहीं! वह कहीं दूर उड़ गया है।

गोधूलि की वह वेला! चन्द्रा अपने 'पति' के घर जा रही है। मोटर पर पति हैं, बगल में वह बैठी है, बूढ़ा ड्राइवर गाडी स्टेशन की ओर ले जा रहा है। और लोग पहले ही चले गये हैं।

मोटर को रुक जाना पड़ा। एक छोटी भीड़ एक मुर्दे को लिये जा रही थी। सभी व्यक्ति शान्त और गम्भीर थे।

बूढ़े ड्राइवर ने पीछे मुड़कर करुण स्वर में कहा—"रानी बिटिया, यह लाश 'मास्टरजी' की है!"

"मास्टरजी!" चन्द्रा को लगा, जैसे हृदय की गति बन्द हो रही है।

बूढ़ा ड्राइवर 'स्टीयरिङ्ग ह्वील' पर हाथ रख कर बोला—"तकदीर की बात है! सुना है, इन्होंने जहर खा लिया। क्या जाने, बेचारे को कौन दुःख रहा? आदमी भला था, क्यों रानी बिटिया?"

किन्तु रानी बिटिया को तब तक गश आ गया था।

थोड़ी देर बाद जब चन्द्रा को होश आया, तो उसने देखा ड्राइवर पंखा झल रहा है, और पति मुख पर पानी के छींटे दे रहे हैं।

चन्द्रा की आँखें खुलने पर बूढ़ा ड्राइवर बोला—"रानी बिटिया का हृदय बड़ा कोमल है!"

चन्द्रा ने देखा—गोधूलि की वेला बीत चुकी है, और स्टेशन पर बिजली की बत्तियाँ जल उठी हैं। सूखी आँखों से वह इधर-उधर देखने लगी, मानो वह कुछ भी नहीं समझ रही हो।

और इसी बीच ट्रेन आ पहुँची .

सेकेण्ड क्लास के डिब्बे में बैठी चन्द्रा सूनी आँखों से कभी यात्रियों की ओर देखती है, कभी अपने पति की ओर ।

पति हैरान है कि यह कितने कोमल हृदय की है, जो एक लाश देखकर इस तरह मूर्छित हो सकती है !

...तब उस अभागे पति ने क्या समझा था कि चन्द्रा ने जो लाश देखी है, वह स्वयं उसी के प्रेमी की है ! हृदय तो उसी लाश के साथ चला गया, और दूसरी लाश इस 'पति' नामधारी व्यक्ति के पास है ! दो तन, एक प्राण थे । प्राण चले गये, बाकी बचा है तन ! एक जलकर राख हो गया होगा, दूसरा बिना जलाये पड़ा है ! सम्भवत रक्खे ही रक्खे यह मिट्टी हो जाय !

सुहागरात के दिन चकित होकर पति ने पूछा—"तुम सुखी नहीं हो ?"

चन्द्रा अपनी भोली और करुण आँखों से देखती भर रही । पति ने कहा—"तुम्हारी मुस्कराहट क्या बनावटी नहीं है ?"

चन्द्रा का मुख स्याह पड़ गया ।

"तुम कुछ छिपाना चाहती हो न ?"

चन्द्रा का मुख स्याह से स्याह होता गया ।

पति थके स्वर में कह सका—"चन्द्रा, यह एक दुर्घटना है !

चन्द्रा का शरीर चलने लगा । शव मात्र तो था वह ! पति निराश होकर यूनिवर्सिटी चले गये । तार गया कि चन्द्रा की हालत दिन-दिन नाज़ुक हो रही है । पिता दूसरी ट्रेन से आये, और देख कर स्तब्ध रह गये ।

आँसू छलक ही उठे । आखिर पिता का हृदय था ! बोले—"नादान ही बनी रही, बेटी . !"

× × ×

और अब यह 'भवाली सेनटोरियम'—

अब वह अतीत और वर्त्तमान को धुधली आँखों से तौल रही है। अपनी काया पर उसे अब जरा भी मोह नहीं है। खिड़की के बाहर सुदूर विस्तृत हिमाच्छादित पर्वत-श्रेणियों को देखती है, और कुछ झुंझलाती भी है। क्या इस क्षितिज के बाद भी कोई दुनिया है? क्या उस दूर की दुनिया में इसी तरह कोमल प्राणों पर निर्मम आघात किये जाते हैं?.

जीवन और मृत्यु! जीवन उसने चाहा था, वह उसे नहीं मिला। अब तो दूसरी वस्तु ही अवशेष रह गई है। मात्र सत्रह वसन्त वह देख सकी है। इस छोटे से जीवन मे ही उसने अपनी सारी हँसी-खुशी लुटा दी है! सारा कोप आज रिक्त है! अब वह मुक्त है—निश्चिन्त है।

रह-रह कर पति की याद भी आ जाती है। क्या अभिशाप बनकर वह उस पर नही छा गई? पति का खिलता चेहरा मुरझा गया था। और वह मुरझाया मुख रह-रह कर व्यथा दे जाता है।

वह 'उस पार' जाने की तैयारी में है। मन का सारा अवसाद धुल गया है। हृदय फिर निर्मल है। वह हलकी है।

डाक्टरों ने फुसफुसा कर पिता से कहा—"Last stage (आखिरी दर्जा) है।"

शब्द वह सुन पाई थी। सुन कर एक तरह की खुशी ही हुई। अब और अधिक उससे टिका भी नही जाता। रह-रह कर 'विद्यापति' की उन पंक्तियों को गुनगुनाने की बड़ी इच्छा हो रही है—

'सखि की पूछसि अनुभव मोय
सोई पीरिति अनुराग बखानिते
तिले तिले नूतन होय ..

गुनगुनाना चाहती है; किन्तु कण्ठ में बल नही रह गया है। आवाज फट जाती है।

रह-रह कर तन्द्रा आती है । तन्द्रा में मानो मास्टरजी की आवाज सुन पाती है । सारा शरीर पुलकित हो उठता है । मास्टरजी की आवाज है । साफ उन्हीं की आवाज है :

"...पानीपत की तीसरी लड़ाई किस सन् में हुई थी ? इङ्गलैण्ड के इतिहास में जैकोबिन्स कौन थे ?...सोने की खान कहाँ-कहाँ पाई जाती हैं ? ..मैनचेस्टर किसलिए मशहूर है ?...आदि...अरे भाई, कुछ तो बोलो । जानती हो या नहीं, 'हाँ' या 'न' ..पढ़ाई इस तरह नहीं होती । ऐसी यादगारी रखने से आदमी इम्तहान नहीं पास कर सकता. .नहीं चन्द्रा, तुम्हें छोड़कर मैं नहीं जाऊँगा...।"

"मास्टरजी !" अस्फुट स्वर आप ही आप बाहर हो गया ।

नर्स चन्द्रा की ओर देखकर प्रश्न की आँखो से चन्द्रा के पिताकी ओर देखने लगी ।

पिता ने रूमाल निकाल कर मुँह पोछने का बहाना किया ।

(१०)

पढ़ते-पढ़ते जब जी ऊब जाता है, तो जयन्त कमरे में चहल-कदमी करने लगता है । खिड़की के पास आ खडा होता है, और आँखें जहाँ तक जा सकती हैं, फैला देता है ।

परीक्षा को मात्र चार रोज हैं । लडके सभी गम्भीर हैं । तिकड़म कर, सिनेमा जाना भी बन्द है, और व्यर्थ की खिलखिलाहटें भी कानों के परदे नहीं छेदतीं ।

जयन्त थक कर उठा, तो टहलने निकला । और दिन वह पार्क की ओर जाया करता था । आज न जाने क्यों, वह दूसरी ओर निकल गया । अपने विचारों के प्रवाह में वह बहता चला और जब एकाएक माधव भैया का घर सामने आ गया, तो उसे चौंक जाना पडा । आज कितने दिनों बाद वह इस ओर आ पाया है ! यह क्या ठीक हुआ ?

मन में आया, लौट जाय; किन्तु लौट न सका; पैर नहीं हटे । मन और पैरों में द्वन्द्व था, जीत पैरों की ही हुई ।

आवाज देने पर शारदा ने निकल कर दरवाजा खोल दिया। दोनों ने एक दूसरे को भर आँखो देखा।

शारदा ने अधरों पर म्लान मुस्कराहट लाकर कहा—"आज कैसे रास्ता भूल गये, जयन्त बाबू?"

जयन्त मुस्कराने का प्रयत्न करते हुए बोला—"सच भाभी, रास्ता ही भूल गया हूँ।"

"अन्दर आइये, दरवाजे पर क्यों खडे हैं?"

जयन्त चुपचाप भीतर चला आया। कुरसी पर बैठते हुए उसने पूछा—"माधव भैया कहाँ हैं?"

"क्या पता! अभी गये हैं और रात को एक बजे आयेंगे।" शारदा ने अन्यमनस्क होकर कहा।

"एक बजे!" बात कुछ-कुछ समझते हुए भी जयन्त बोला।

"यह तो रोज की बात है, जयन्त बाबू!"

जयन्त चुप रहा।

शारदा ने उठते हुए पूछा—"आपके लिए थोडा जलपान लाऊँ, जयन्त बाबू?"

'लाइये। आपके हाथ से जलपान पा सकूँ, यह मेरे लिए कम सौभाग्य की बात नहीं है।" कहते हुए जयन्त का मुख किंचित म्लान हो गया।

शारदा ने ठिठक कर जयन्त के म्लान चेहरे की ओर देखा और फिर जलपान लाने चली गई।

लौटी तो उसके हाथ में एक रकाबी और एक गिलास था।

जयन्त ने लक्ष्य किया कि शारदा की कलाई पर पट्टी बँधी है। चकित होकर पूछा—'यह क्या है?"

शारदा निष्प्रभ हो गई। मुश्किल से बोल सकी—"यह . यहाँ चोट आ गई है।"

"कैसे ?" जयन्त ने रकावी हाथ में लेते हुए पूछा।

"चोट आने के लिये किसी विशेष कारण की क्या जरूरत पड़ती है, जयन्त बाबू ?"

जयन्त पहेली न समझ सका। बोला—"कुछ और साफ कहिये।"

शारदा ने फीकी मुस्कराहट से कहा—"यह आपके भैय्या की सौगात है, जयन्त बाबू !"

"भैय्या की ?"

"नशे में काँच का गिलास फेंक कर मारा था। उनका निशाना तो मुँह पर था किंतु चूक कर वह मेरी कलाई पर लगा।" शारदा की वह करुण मुस्कराहट जयन्त के हृदय में उतर आई। वह बैठा रह गया।

"अरे ! आप तो रकावी हाथ में धरे क्या सोच रहे हैं ! पहले खाइये भी।"

जयन्त ने शान्त स्वर में कहा—"नहीं भाभी, खाने की इच्छा नहीं है।"

"इच्छा नहीं है ? आप क्या मेरा अपमान नहीं कर रहे हैं ?" शारदा मुस्कराई।

बिना कुछ बोले जयन्त खाने लगा।

शारदा ने कहा—"जयन्त बाबू, आपके चेहरे पर न जाने क्यों एक करुण भाव पाती हूँ। आपको कोई कष्ट है क्या ?"

"कष्ट ?" पानी का घूँट पीकर जयन्त ने मुस्कराते हुए कहा—"कष्टों से आदमी कभी बचा है, भाभी ?"

शारदा न जाने क्या सोच रही थी। एकाएक बोली—"उस दिन आप ऐसी बात कह गये कि मैं चकित रह गई। मेरे प्रश्न के उत्तर में आपने कहा कि उन बातों को जानकर मैं खुश नहीं होऊँगी। अच्छा जयन्त बाबू, आपकी पत्नी तो खूब सुन्दर होगी ?"

जन्यत के चेहरे पर व्यथा की एक छाया दौड़ गई। बोला—"हाँ, चन्द्रा काफी सुन्दर थी...!"

"सुन्दरी थी! अब क्या सुन्दर नही है?" शारदा ने विस्मय में आकर पूछा।

"अब तो वह अन्तिम घड़ियाँ गिन रही है, भाभी!"

"अन्तिम घड़ियाँ!" शारदा चकित थी।

जयन्त ने करुण स्वर में कहा—"आपने ही तो एक दिन कहा था, आदमी जो चाहता है उसे क्या पा भी लेता है? चन्द्रा जो चाहती थी, नहीं पा सकी। मैं जो चाहता था, नहीं पा सका। आप जो चाहती थीं, नही पा सकीं!"

शारदा का मुख उतर आया। कुछ देर तक निस्तब्धता रही। फिर वह बोली—"आप बतला देंगे जयन्त बाबू, कि मैं क्या चाहती थी?"

जयन्त उठ खड़ा हुआ। बोला—"आज समय नही है, भाभी! एक दिन बतला दूँगा। उसकी एक कहानी है।"

शारदा भी उठ खड़ी हुई। मुस्कराने का असफल प्रयत्न करते हुए उसने पूछा—"और आप क्या चाहते थे, जयन्त बाबू?"

जयन्त का मुख गम्भीर हो गया। कुछ क्षणों तक वह शारदा के मुख पर अपनी आँखें गड़ाये रहा। फिर एक उच्छ्वास फेंक कर बोला—"मैं क्या चाहता था भाभी, यह कहने से अब फायदा ही क्या होगा?"

जयन्त बाहर निकल गया।

शारदा की आँखें जयन्त का पीछा करती रहीं, और जब वह ओझल हो गया, तो उसकी आँखों में आँसू छलक आये।

बात शारदा के लिए अधिक रहस्यमय नही रही। उसके अभाव ने दूसरे के अभाव का पता बतला दिया। किन्तु चन्द्रा की पहेली कुछ अजीब रही।

शारदा ने सोचा, यह पाना और खोना क्या सृष्टि-काल से नहीं चला आ रहा है? आदमी का असतोष उसे जलाकर राख कर देता है।

अभाव की चक्की में न जाने कितने प्राणी पिसते हैं; न जाने कितने कोमल, सुन्दर और प्रतिभाशाली इस अभाव से घिर कर अपनी कोमलता, सुन्दरता और प्रतिभा को खो देते है !

यह विषमता आदमी के जीवन को खोखला कर देती है। निठुर हाथों के प्रहार, ये अभागे नहीं बरदाश्त कर सकते। वे तिल-तिल कर जल जाते है। दुनिया को अपने स्वार्थ की चिन्ता है। सभी अपने सीमित सुख-दुख में इस तरह बझे हैं कि एक दूसरे की पीडा का अनुभव तक नहीं करते !

जीवन क्या इसी तरह जलने के लिए बना है? शारदा ने आँखों मे आये हुए आँसुओ को पोछ डाला।

× × ×

दोपहर के बाद शारदा को छुट्टी ही छुट्टी रहती है। सारे घर में वह अकेली है। न कोई हितू है, न कुटुम्बी। ऐसे परिवार मे रहने की अभ्यस्त शारदा नही है। वह सदा से पाँच आदमियों के कोलाहल के बीच रहती आई है। अब सूनी घडियों में सिर्फ सोचना ही सोचना रहता है। कभी-कभी थोड़ी नींद भी आ जाती है। किन्तु यह नींद सुख की नींद नहीं रहती। बुरे सपने आते है और आँखें मल कर उसे उठ जाना पडता है।

घर की याद आती है। पिता का वात्सल्य-पूर्ण मुख याद आता है; भाइयों का दुलार याद आता है, बहिनो का प्यार याद आता है। तब शारदा को क्या कभी अनुमान हो पाया था कि ऐसे दिन सपने बन कर रहेंगे ! पिताजी की चिट्ठी कभी-कभी आती है। वे लिखते हैं—"बेटा, आदमी वही है, जो हँसते-हँसते दुःख झेल ले। पति ही तुम्हारा सब कुछ है। घर-बार सँभालना ! भगवान् के स्नेह की छाया तेरे सुहाग पर सदा रहे, यही उनसे प्रार्थना करता रहता हूँ।"

'सुहाग' पढ कर शारदा करुण भाव से मुस्कराई थी। हिन्दू लडकी के लिये यही तो सब से बडा सुख है !

'पति देवता होता है !' माँ ने भी कहा था। आज उसकी स्नेहमयी जननी नही है। माँ की याद इस सूनेपन में और भी अखरती है।

.. किन्तु इस 'पति' को एक क्षण भी देवता मानने को उसका मन तैयार नहीं होता है। वह रुँधे गले से मानो पूछना चाहती है—'देवता क्या ऐसा ही होता है ?'

उसका यह पति भूरी आँखो से घूरना भर जानता है। वह शराब के नशे मे उन्मत्त हो, शारदा को गोद में उठा लेता है और उसके भयभीत चेहरे की ओर देख कर एक भयकर अट्टहास कर उठता है। तब शारदा की इच्छा होती है—काश, उसकी मौत हो जाय !

और यह जयन्त—

शारदा का मन बन्धन तोड कर जयन्त की याद करता है। वह मानो जयन्त के चरणो पर न्योछावर हो जाने को तत्पर है। अभागा मन !.. उसे क्या यह नहीं मालुम कि धर्म की आँखो में यह 'पाप' हिन्दू-समाज में अक्षम्य है। मण्डपो के बीच, मन्त्रो द्वारा जो व्यक्ति उसका 'पति' बना है, मन भी उसी का है। धर्म यही कहता है। समाज की यही आज्ञा है।

. .जयन्त उसकी दुर्बलताओ की तस्वीर है। ये दुर्बलताएँ अक्षम्य हैं। किन्तु हाय, बार बार ऐसा क्यों होता है, क्यो ? क्यो उसकी इच्छा होती है कि जयन्त के हृदय से अपने हृदय को मिला दे ? क्यो जयन्त को बार-बार देखने की तृष्णा होती है ? क्यो एक उच्छ्वास बाहर आता है कि जयन्त उसका होता . जो बात नहीं हो सकी है, नहीं हो सकती है, उसके लिये इतनी आकुलता क्यों ? ..

मन को बाँधने के लिए वह किताबें पढ़ना चाहती है। किन्तु पुस्तकें ऐसी निम्न कोटि की हैं कि घृणा हो आती है। जासूसी उपन्यासों की भरमार है; कुछ अत्यन्त कुत्सित पुस्तकें हैं, जो उसके पति की रुचि की परिचायक है !

पुस्तकें वह नहीं पढ़ सकती। सिलाई करने बैठती है, तो मन फिर उन्मुक्त हो जाता है।।

शारदा का जी छटपटा उठा। उठ कर वह खिड़की के पास गई। देखा, तारा बच्चे को दूध पिला रही है।

शारदा ने इशारा कर कहा ."आओ बहिन।"

तारा ने मुस्करा कर कहा—"आई।"

तारा आ गई। उन्नीस-बीस की उम्र। चेहरा काफी सुन्दर है। आँखें बड़ी-बड़ी और प्यारी है। मुँह पर मुस्कराहट है। देखने से ही उदारता टपकती है।

तारा को अवकाश नहीं रहता। शारदा के पास आने को उसे कम अवसर मिलता है। और फिर तारा, शारदा के पति आबकारी के दारोगा माधव से डरती भी है। एकाध बार जब उसकी नजर पड़ी है, तो उसने पाया है, माधव बुरी नज़र से उसे देख रहा है। घृणा और लज्जा से उसका मुख लाल हो उठा है।

किन्तु आज वह शारदा के आह्वान की अपेक्षा नहीं कर सकी।

शारदा ने तारा की गोद का बच्चा लेकर कहा—"कितना प्यारा है!"

बच्चे को चूम कर उसे तृप्ति हुई। बहुत दिनों के बाद आज उसे सच्ची खुशी हुई। पूछा—"कितने महीने का हुआ यह?"

"यह सातवो लगा है।" प्रसन्न मुख से तारा ने जवाब दिया।

"तुम्हारी शादी कितनी उम्र में हुई थी, बहिन?" तारा ने लजा-कर कहा—"जब चौदह की थी।"

"यह पहला बच्चा है?"

तारा ने कुछ उदास होकर कहा—"नहीं, दूसरा। पहला दो महीने का होकर चला गया।"

और तब अनेक प्रकार की बातें हुईं। सुख-दुख की चर्चा चली। तारा ने पूछा—"इनके साथ कैसी निभ रही है?"

शारदा ने करुण स्वर में कहा—"दिन तो बीत ही रहे हैं, बहिन !"

तारा ने उसके मर्म को पहिचान कर कहा—"प्रारब्ध की बात है बहिन ! इसमें आदमी क्या कर सकता है ?"

बातें हो ही रही थी कि एकाएक माधव आ गया। तारा ने घबरा कर घूँघट खींच लिया। किन्तु माधव की तीक्ष्ण आँखें उसके घूँघट को छेद कर कुछ और निकालने का प्रयास कर रही थीं।

तारा ने उठते हुए कहा—"जा रही हूँ, बहिन ! फिर कभी आऊँगी।"

और तारा चली गई।

तारा गई, किन्तु माधव की हिंस्र आँखें बहुत दूर तक उसका पीछा करती रहीं। इसके बाद माधव ने शारदा की ओर मुड़ कर कहा—"सुनो !"

माधव के स्वर में और दिन की अपेक्षा आज कुछ कम कटुआपन था। शारदा चुप आकर खड़ी हो गई।

माधव ने आँखें नचाकर कुत्सित ढंग से कहा—"तुम्हारी इससे खूब पटती है। क्यों ?"

शारदा मौन रही।

ओठों पर एक विशेष मुस्कान लाकर वह बोला—"है बड़ी हसीन !"

शारदा के मुख पर घृणा के भाव उतर आये। शारदा के और भी निकट आकर माधव ने आँखें नचा कर पूछा—"यह हाथ आ सकती है ?"

आशय समझ कर घृणा, लज्जा और ग्लानि से शारदा का मुख तमतमा उठा। उसके मुँह से सिर्फ यही निकला—"कुत्ता !"

अपने लिये यह विशेषण सुन कर आबकारी के दारोगा का अभिमान जागृत हो उठा। वह बढ़ा और शारदा के गाल पर खींच कर तमाचा जमाया। गरज कर बोला—"मैं कुत्ता हूँ ? तू मुझे कुत्ता समझती है ?"

शारदा तमाचा खाकर और भी तिलमिला गई। बोली—"तुम कुत्ते से भी गए बीते हो।"

आबकारी के दारोगा के लिये यह एक नया सम्मान था! आज तक मुँह पर इस तरह की बातें कहने का कोई दुस्साहस नहीं कर सका था। आबकारी के दारोगा का अभिमान और पौरुष जागृत हो उठा। सामने ही हण्टर टँगा था। उठाकर उसने सारी शक्ति का प्रदर्शन शुरू कर दिया। हण्टर से शारदा के शरीर और मुख पर लकीरें खिचती गईं, खून निकलता आया—

माधव ने गरज कर कहा—"मैं कुत्ता हूँ?"

असह्य यन्त्रणा के बीच भी शारदा चिल्लाई—"तुम कुत्ते से गये-बीते हो, तुम नरक के कीड़े हो।"

(११)

पुस्तकें और पुस्तकें! परीक्षा हो रही है। परचे अच्छे जा रहे हैं। जयन्त अपने भीतर-बाहर की सारी समस्याओं को भूल पुस्तकों में जुटा है।

आज आखिरी परचा था। जयन्त ज्यों ही कमीज पहिन कर यूनिवर्सिटी जाने की तैयारी कर रहा था कि तार लिये चपरासी पहुँचा।

जयन्त ने कुछ सहम कर पूछा"किसका तार है?"

"जयन्त वर्मा।"

हस्ताक्षर कर जयन्त ने तार हाथ में ले लिया। चपरासी के जाने के बाद जयन्त तार लिये कुछ सोचता रहा। जी में आया, न खोले; किन्तु कांपते हाथों ने खोल ही डाला। अँगरेजी में सिर्फ ये अक्षर 'Chandra is no more' अर्थात् चन्द्रा गुजर गई।

'Chandra is no more' जयन्त बुदबुदाया और कुरसी पर बैठ गया। चन्द्रा इतनी जल्दी चली जायगी, इसका उसे अनुमान न था। उसने सोचा था, एक बार तो देखने का मौका मिलेगा ही।

किन्तु ऐसा नहीं हुआ। अभागिनी चन्द्रा चली गई। मिथ्या आडम्बरों पर दो कोमल प्राणियों की बलि हुई !. अशोक की लाश का चित्र आँखो के सम्मुख आ गया। चन्द्रा की लाश उसी तरह निकली होगी।

रोकते-रोकते भी जयन्त के नयनों में पानी आ ही गया। वह कुछ चकित भी हुआ। चन्द्रा के पिता ने जयन्त को नहीं बुलाया ! क्यों नही बुलाया ? शायद वे बुलाने की निस्सारता समझ रहे हो।

घडी की आवाज सुन कर वह चौंका। जी में आया—वह छोड दे परीक्षा। आज क्या वह इस 'मूड' में है कि शेली और कीट्स की कविताओं पर आलोचना लिखे ?

कुछ देर बाद जयन्त मुस्कराया। यह उसकी अपनी मुस्कान है। उसने सोचा, परीक्षा से आदमी कब तक बचा रह सकता है ? सारी जिन्दगी एक परीक्षा ही तो है !

वह यूनिवर्सिटी गया। पर्चा मिला। जयन्त ने मन बाँध कर लिखने की चेष्टा की . 'गत महायुद्ध के बाद की अँगरेजी कविता में कौन कौन-सी प्रवृत्तियाँ काम कर रही है' इस विषय पर लिखते हुये भी जयन्त एक क्षण न भूल सका Chandra is no more

किसी तरह पर्चा कर वह निश्चित अवधि के पहले ही बाहर निकल आया। डेरे पर लौट कर रोने की बड़ी इच्छा हुई। ऐसा क्यों हो रहा है ? जयन्त ने मन को समझाने की चेष्टा की, चन्द्रा का जाना कोई आश्चर्य की बात तो नहीं है। यह तो निश्चित था। जयन्त मानो इसकी सम्भावना सदा करता रहा था। आज जो सम्भावना सत्य हो गई है, उसके लिये इतनी पीडा क्यों ?

और लडके भी परीक्षा-भवन से लौट आये। सभी के चेहरे पर एक प्रकार का आनन्द था। वैसा ही आनन्द जैसा जेल से छूटे हुये कैदियों को होता है।

जयन्त ने सुना, चक्रधर नरेश से पूछ रहा था—"कैसा पर्चा किया है ?"

"अरे, हटाओ भी !" नरेश लापरवाही से बोला—"ग़र करो, बला टली । आज महीने भर से नींद हराम थी । अब तो जो होना था हो गया । बन्दे की आदत है कि काम खतम करने के बाद उसके बारे में जरा भी नहीं सोचता कि फल क्या होगा ।"

चक्रधर के पास खड़े शुक्ल की आवाज आई—"भई, आपने ठीक कहा । आप जानते हैं कि मैं गीता का कितना बड़ा भक्त हूं । गीता के दूसरे अध्याय के ४७ वे श्लोक में कहा गया है—

कर्मण्येवाधिकारस्ते मा फलेषु कदाचन ।
मा कर्मफल हेतुर्भूर्मा ते सङ्गोऽस्त्वकर्मणि ।"

अर्थात् तेरा कर्म करने मात्र में अधिकार है, फल में नहीं । फल की इच्छा से कर्म न कर, और त कर्म न करने का भी आग्रह न कर ।

चक्रधर ने मुस्करा कर कहा—"आप गीता की टाँग सब जगह अड़ाते हैं ।"

ये मिस्टर शुक्ला संस्कृत के विद्यार्थी रहे है । एम० ए० भी संस्कृत मे ही किया है । लम्बी चोटी रखते है और 'मेस' भर मे सबसे अधिक भात खाते हैं । इनका तर्क सदा यह रहता है कि पाश्चात्य शिक्षा ने हमारी अधोगति कर दी है । देवभाषा संस्कृत पढने से ही आत्मिक-बल आ सकता है । गीता पर इनकी निष्ठा यूनिवर्सिटी भर मे विख्यात है । लड़के देवभाषा में अभिरुचि नहीं रखते, फलतः गीता के श्लोक के साथ ही वे व्याख्या भी कर देते हैं । संस्कृत के तत्सम शब्दों का उपयोग ये चुन-चुन कर करते है । लडके इन्हें कभी-कभी मिस्टर शुक्ला के बदले 'मिस्टर गीता' कह दिया करते है ।

.. जयन्त उनकी बातें अन्यमनस्क भाव से सुनता रहा । भीतर

से उसने सिटकिनी बन्द कर ली है। कमरे में गम्भीर होकर चहल-कदमी करता रहा और कभी-कभी खिडकी के पास आ खडा होता।

खिडकी के बाहर जहाँ तक दृष्टि जाती है, मनुष्य और उनकी हलचलें वह देख पाता है। आदमी मृत्यु पर्यन्त अपने को गतिशील रखने की चेष्टा करता है। गति ही तो जीवन का दूसरा नाम है। गति जहाँ रुकती है, विद्वान् उसकी 'सज्ञा' मृत्यु देते हैं। मृत्यु जड है, जीवन चेतन है। चेतन जागरूक का पर्य्यायवाची है। यह चेतना ही मनुष्य को जीने की प्रेरणा देती है।

जयन्त उस सन्ध्या को टहलने नही जा सका। कहीं जाने की इच्छा ही नही हुई। गम्भीर होकर वह सोचता रहा। जयन्त को सोचने की आदत है। यह आदत कभी-कभी उसे मुश्किल में डाल देती है।

...Chandra is no more! (चन्द्रा चल बसी!) बिजली की बत्तियाँ बाहर जल उठी। उजाला फैल गया। जयन्त भी रोशनी करके कुरसी पर बैठ, आज का अखबार देखने लगा। युद्ध और युद्ध मौतें हाहाकार.. चीत्कार...

जयन्त ने सोचा, आदमी विकट जीव है। वह मौत से खेलना पसन्द करता है। अपनी सारी बुद्धि और प्रतिभा वह अपने को ही नष्ट करने के लिए खर्च करता है। कितनी अनोखी बात है! विज्ञान की छाती को चीरकर आदमी ने विष ही निकाला, अमृत को छोड दिया। और आज यह विष आदमी को ही नष्ट कर रहा है!

.. आदमी, आदमी का खून पीता है! जो जितनी तेजी के साथ छुरी घुसेड सकता है, वह उतना ही बहादुर है! उसे तगमें मिलते हैं, इज्जत मिलती है; धन मिलता है! आदमी ने आदमी को नहीं पहिचाना। अपनी सभ्यता पर डींग हाँक कर वह गर्व का अनुभव करता है।

सारे पिछले इतिहास पर दया की दृष्टि डाल कर वह हँस भर दिया है। सोचा—मैं कितना आगे निकल गया!

हाँ, आदमी आज जरूर आगे है। नाश के तत्वों में वह जरूर पिछले इतिहास को पीछे छोड़ आया है। वह आदिम युग से भी असभ्य और बर्बर अवश्य हो गया है। वह अपनी ही जाति के मासूम बच्चों को बम से भूँज सकता है, वह औरतों को, उन औरतों को जिन्होंने आदमी को पैदा किया है, जहरीली गैसों से तड़पा तड़पा कर मारता है! वह बूढ़ों और रोगियों तक की जर्जर हड्डियों को पीसकर चूर कर देता है!

आदमी आज आगे है। वह एक दूसरे का गला घोंटने में पहले से बहुत कुशल है! वह कौर की रोटी बड़ी सफाई से छीन सकता है। तड़पाकर आनन्द लेने में वह 'नीरो' से भी अधिक फुर्तीला हो गया है। आदमी-आदमी को बड़ी शिष्टता और नम्रता के साथ निगल सकता है।

आदमी पशु से श्रेष्ठ है। अवश्य ही वह श्रेष्ठ है। पशु बेचारा तो आदमी की खूंख्वारी देखकर हैरान है। मानो वह कहना चाहता है—'हे आदमी! तुम्हें नमस्कार! तुम सचमुच सृष्टि के सर्वश्रेष्ठ प्राणी हो। तुमने अपनी मनुष्यता को पशुता से बहुत आगे कर लिया है। तुम जिस फुर्ती और निर्दयता के साथ अपने भाई का गला घोंट सकते हो, मुझे कहते लज्जा आती है, वह मेरे सामर्थ्य के बाहर की बात है। मैं चकित होकर तुम्हें देखता हूँ। अब मैं तुम्हें अपना गुरु मानने लगा हूँ। मेरा नमस्कार स्वीकार करो। मुझे अपनी इस कला में दीक्षा दो।'

यही आदमी है—विधाता की सर्वश्रेष्ठ कृति! आदमी की प्रशंसा वेद की ऋचाओं से लेकर आधुनिक युग तक होती आई है!

आज आदमी का परिधान अत्यन्त उज्ज्वल और सुन्दर हो गया है। आज आदमी कृत्रिम साधनों से अपने को कितना सुन्दर बना सका है। किन्तु उसके चमकते, बहुमूल्य और भड़कीले वस्त्र के नीचे हृदय नाम की जो वस्तु है, वह कितनी कुत्सित हो गई है! आदमी ने अपने हृदय की कुरूपता भड़कीले वस्त्रों से छिपा रक्खी है। सागर को चीर कर, आकाश को लाँघ कर वह चलता है और खुशी में चिल्ला कर कहता है—'है कोई सृष्टि में मुझसे आगे? मैं सर्वश्रेष्ठ प्राणी हूँ।'

किन्तु भीतर हृदय है, जो सड़ रहा है। सड़कर गल उठा है। कुरूपता आज स्वयं अपनी कुरूपता पर आँखें बन्द कर लेती है।

आदमी है, जो कुछ भी नहीं देख पाता। दुनिया को टटोल कर वह अपने को टटोलना भूल गया है। सारी दुनिया को प्रकाश दे, वह स्वयं अँधेरे में है।

कितनी बड़ी विडम्बना है यह! प्रकाश अणु-अणु में व्याप्त है, किन्तु जो प्रकाश देता है, वह स्वयं प्रकाश नहीं पाता। आदमी का प्रकाश आज व्यर्थ हो उठा है। उसकी सारी निपुणता पर इस अँधेरे ने मानो पानी फेर दिया है। आज उसकी निपुणता उसे ही असह्य हो उठी है। आज उसकी कारीगरी उसे ही निगल रही है।

आदमी ने कितना बड़ा धोखा खाया है!

...जयन्त ने अखबार रख दिया। आँखें मीचकर अनुभव किया—ओह! सिर में दर्द होने लगा है! वह क्यों इतना सोचा करता है? क्यों वह अपने को इतना परेशान करता है!

इसी बीच किसी ने किवाड़ खटखटाए। नरेश की आवाज आई—"अरे भाई, खोलो। तुम्हें कब से खोज रहा हूँ!"

उठकर जयन्त ने किवाड़ खोल दिये। देखा—नरेश के अतिरिक्त 'शशांकजी' चक्रधर और मिस्टर शुक्ला भी हैं।

'शशांकजी' ने नमस्ते कर कहा—"चलिए। चौकड़ी जमी है। आपकी ही प्रतीक्षा कर रहा था। उस दिन मैं 'मूड' में न था, अतः 'प्रलय-गीत' नहीं सुना सका। आज 'प्रलय-गीत' से लेकर 'प्रणय-गीत' तक सभी सुनाऊँगा।"

जयन्त अधरों पर म्लान मुस्कराहट ले बोला—"उस दिन आप 'मूड' में न थे। आज मैं नहीं हूँ। क्षमा करें!"

मिस्टर शुक्ला जयन्त की गम्भीर मुख-मुद्रा को देख बोले—"यह क्या? आपके मुख पर प्रसन्नता नहीं है! मनुष्य को सदैव प्रसन्न

रहना चाहिये। गीता के द्वितीय अध्याय के ६५ वें श्लोक में कहा गया है :—

'प्रसादे सर्व दु खानां हानि रस्योपजायते।
प्रसन्नचेतसो ह्याशु बुद्धि पर्यवतिष्ठते।'

अर्थात् प्रसन्नता से सब दु खों का नाश होता है। प्रसन्न चित्त पुरुष की बुद्धि शीघ्र निश्चल होती है।"

चक्रधर शरारत भरी नजर से मिस्टर शुक्ला की ओर देख बोला—"ठीक फरमाया! प्रसन्नता से मेस में सच से अधिक खाना भी खाया जा सकता है! क्यों 'गीताजी'?"

सभी ठहाके मार कर हँस पड़े। मिस्टर शुक्ला कुछ झेंप गये।

नरेश ने जयन्त का हाथ पकड़ कहा—"अब चलो। तुम्हारे बिना चौकड़ी नहीं जमेगी।"

जयन्त ने अपनी लाचारी प्रकट कर कहा—"सच कहता हूँ नरेश, आज मेरी तबीयत जरा भी ठीक नहीं।"

जयन्त का स्वर सुनकर सभी ठिठक गये। फिर उन्होंने कुछ नहीं कहा। वे वापस लौट गये।

किन्तु वे चौकड़ी जमाना ही चाहते थे। दो-चार रोज में सभी लड़के चले जायेंगे। इसलिये इन कई घण्टों का वे सदुपयोग करना चाहते थे।

चक्रधर ने बात छेड़ी। कई विषयों पर बातें होती रहीं। राजनीति से उतर कर अन्त में वे अपने शाश्वत विषय पर आ गये—हसीन और जवान लड़की!

इस विषय पर सभी गरमागरम बहस कर सकते थे। अछूत थे, तो मिस्टर शुक्ला। वे उठते हुये बोले—"सज्जनो! मैं इस विषय में आप लोगों के साथ कदापि सहमत नहीं हो सकता कि सुन्दरी बाला ही संसार में सबसे आनन्दप्रद वस्तु है। 'गीता' के तीसरे . ."

चक्रधर ने कहा—"हाँ, हाँ, अवश्य कहिये। 'गीता' में क्या कहा गया है?"

मिस्टर शुक्ला खखार कर बोले—"गीता के तीसरे अध्याय के ३९ वें श्लोक में कहा गया है '—

'आवृत ज्ञान मेतेन ज्ञानिनो नित्य वैरिणा।
कामरूपेण कौन्तेय दुष्पूरेणानलेन च।'

अर्थात् कामरूपी यह नित्य का शत्रु कभी न तृप्त होनेवाली आग के समान है। इसने ज्ञानी पुरुषों के ज्ञान को भी ढँक लिया है।"

इस पर सब लोग मुस्कराने लगे। चक्रधर ने मिस्टर शुक्ला की मोटी तोंद की ओर नज़र गड़ा कर पूछा—"तोंद पर भी गीता में कुछ कहा गया है?"

मिस्टर शुक्ला झेंप कर बोले—"आप तो परिहास करते हैं!" और वे चले गये।

चक्रधर ने मुस्करा कर कहा—"शुक्लजी पहले से ही 'मेस' में धरना देने गये हैं!"

सभी ने एक बार फिर ठहाका लगाया। अन्त में हसीन और जवान लड़की पर जम कर बातें हुईं। यूनिवर्सिटी की सभी लड़कियों के रूप की आलोचना-प्रत्यालोचना हुई सुजाता की नाक छोटी है, इन्दु मोटी है, एलिस चुड़ैल है, मीरा तो चार बच्चों की माँ होने लायक है, इमा तो ऊँट है, उमा पहलवान है .

मेस के नौकर ने आकर कहा—"बाबू, खाना ठंडा हो रहा है।"

चौकड़ी की बैठक स्थगित हो गई।

(१२)

रात भर जयन्त को अच्छी नींद नहीं आई। करवट बदलते ही बदलते समय कट गया। सुबह हलकी तन्द्रा आई थी किन्तु वह भी पूरी नहीं हो सकी।

किसीने आवाज़ देकर पुकारा—"जयन्त बाबू !" जयन्त का मन झल्ला गया। ये लड़के क्या कभी गम्भीर होना नहीं जानते ? इच्छा हुई, चुप रहे। किन्तु आवाज क्रमश. तीव्र होती गई।

उठ कर दरवाजा खोला, तो एक आदमी ने एक लिफाफा बढ़ा दिया। जयन्त ने उसकी ओर प्रश्न की आँखों से देखा। वह व्यक्ति बोला—"मैं दारोगा साहब का नौकर हूँ।"

लिफाफा खोल कर जयन्त ने पढ़ा। चन्द पंक्तियाँ थीं—

"जयन्त,

तुमसे एक बहुत जरूरी काम है। चिट्ठी देखते ही चले आओ। मैं तुम्हारा इन्तजार कर रहा हूँ।—माधव।"

कुछ देर तक जयन्त ठिठका रहा।. बहुत जरूरी काम है। आज माधव भैया को उसकी क्या जरूरत पड़ी ? ..

वह नौकर से बोला—"जाओ, कहना, आध-घण्टे में आ रहा हूँ।"

नौकर चला गया।

मुँह-हाथ धोकर जयन्त थोड़ा स्वस्थ हुआ। फिर चप्पल पहिन कर चल दिया। रास्ते में वह सोचता जा रहा था।. अब तो वह यूनिवर्सिटी की जिन्दगी खतम कर चुका। सभी लड़के आज या कल तक चले जायँगे। उसे भी जाना होगा। अब वह क्या करेगा ? .

घर पर उसका मन नहीं लगता। घर से जयन्त को अब विशेष कुछ आकर्षण नहीं रह गया है। सम्भवत. पिता जयन्त की दूसरी शादी के लिये मोल-तोल कर रहे होंगे।

जयन्त क्या अब ब्याह करेगा ? क्या उसका हृदय अब उसे चैन से रहने देगा ? यह जो निरन्तर पीड़ा, अविराम व्यथा हो रही है ! दूसरा ब्याह तो एक घातक विडम्बना होगी।

जयन्त मुस्कराया। हमारे समाज में लड़कियों का मूल्य ही क्या है ? वे तो ऐसी वस्तु हैं, जो आसानी से दूर फेंकी जा सकती हैं।

पत्नी के मरने के बाद पति आराम के साथ अपने हाथो मे हल्दी लगवा सकता है। नारी का सुहाग-सिन्दूर जब एक बार मिट जाता है, तो प्राय दूसरे जन्म मे ही चढता है! लडकियाँ विधवा होने के बाद 'सेकेण्ड हैण्ड' (पुरानी) हो जाती है, और दुनिया मे 'सेकेण्ड हैण्ड' का मोल सदा से ही कम रहा है। 'सेकेण्ड हैण्ड' लेनेवाला व्यक्ति बाह्य रूप से भले ही सीना तान कर चले, अन्तर में उसके एक कचोट ही रहती है।

पुरुष सदा 'फर्स्ट हैण्ड' (नई) लेने के लिए स्वतन्त्र है। उसके पास पौरुष जो है!

नारी आग से नही खेल सकती। यदि खेलती है, तो बडी आसानी से झुलस भी जाती है। प्रकृति भी पुरुष की सहायिका है। पुरुष बडी आसानी से पल्ला झाड़ कर उठ खडा होता है। उसके चेहरे पर एक शिकन तक नही आती।

दूसरी ओर नारी झुलसने के बाद जब चारो ओर देखती है, तो पाती है, कही कोई नही! अपने दाग को वह कपडे से ढंक रखना चाहती है। उसे रगड कर कभी-कभी मिटा भी देती है। किन्तु नारी, नारी है! नारी का मातृत्व इस दाग को मिटाते समय चीख उठता है। दुर्बलता उसके हाथ पकड लेती है।

दुनिया व्यग्य और विद्रूप कर कहती है—'भई वाह! कितना अच्छा दाग है!'

यत्रणा की चोट से तिलमिला कर नारी बहुधा गगा की गोद मे मुँह छिपा लेती है।

यही पुरुष और नारी का इतिहास है। और कहावत है कि इतिहास अपने को ही बार-बार दोहराता है!

जयन्त ने चौक कर देखा—वह आ पहुँचा है! दरवाज़ा खुला था। भीतर घुसकर उसने माधव की ओर देखा। उसका चेहरा भयकर रूप से गम्भ था।

जयन्त ने स्वर को स्वाभाविक बनाने का प्रयत्न करते हुए पूछा—"बात क्या है ?"

"तुम्हें एक जरूरी काम से बुलाया है, जयन्त !" माधव की गम्भीर आवाज आई।

जयन्त मौन रहा।

बिना भूमिका के माधव बोला—"तुम्हें अपनी भाभी को मायके पहुँचा आना होगा।"

"मायके !" जयन्त न समझ सका।

"मुझे छुट्टी नहीं है। तुम इसी दस बजे की गाड़ी से चले जाओ।" माधव ने दस-दस के तीन नोट जयन्त के हाथ में रखते हुए कहा।

"आखिर बात क्या है ?" जयन्त ने हैरान होकर पूछा।

"बात कुछ नहीं, तुम्हारी भाभी मायके जाना चाहती है।" माधव ने हैट उठाते हुए कहा—"उम्मीद है, तुम मेरा पहला और आखिरी काम करने से इनकार न करोगे।"

बिना उत्तर की प्रतीक्षा किए वह बाहर हो गया। नौकर की ओर देख बोला—"ताला बन्द कर चाबी आफिस में दे जाना।"

जयन्त कुछ क्षणों तक हैरान रहा। फिर कमरे के भीतर पैर रख कर देखा—शारदा चुपचाप सिर झुकाए बैठी है। जयन्त शारदा का चेहरा देख कर स्तब्ध रह गया। वह भयानक रूप से सादा था। कपोलों पर कुछ नीली रेखाएँ सूज गई थीं।

जयन्त ने पुकारा—"भाभी !"

शारदा की मानो तन्द्रा टूटी। मुस्कराने का असफल प्रयत्न कर बोली—"आइये, जयन्त बाबू ! आपकी ही राह देख रही थी।"

जयन्त ने देखा—बोलते-बोलते शारदा का गला रुँध गया है। स्थिति का कुछ ठीक अनुमान वह नहीं कर पाया। पूछा—"यह सब क्या है, भाभी ? आप इस तरह . "

"बतला दूँगी, जयन्ती बाबू! पहले मुझे यहाँ से हटाइए। स्टेशन चलिए, नहीं तो मैं तडप-तडप कर मर जाऊँगी।"

शारदा के स्वर से जयन्त और भी स्तब्ध रह गया। सूखे गले से वह बोल सका—"अच्छा, यही होगा। आप इतनी व्यग्र क्यों हो रही हैं?"

शारदा आँचल से अपने आँसू पोंछने लगी। जयन्त पसोपेश में था कि बात क्या है?

शारदा बोली—"चलिए, जयन्त बाबू!"

जयन्त ने चकित होकर कहा—"अभी जाकर क्या होगा? अभी तो डेढ घण्टे की देर है।"

शारदा ने बैठे गले से कहा—"मैं यहाँ एक क्षण भी नहीं रहना चाहती, जयन्त बाबू!"

कुरसी पर बैठता हुआ जयन्त बोला—"भाभी, आप मुझे कारण नहीं बतलायँगी?"

"कारण? कारण पूछते हैं जयन्त बाबू? कारण तो था ही।" कह कर शारदा गम्भीर हो गई।

जयन्त ने चेहरे पर की नीली लकीरो को देख कर कहा—"ये निशान ये तो मुझे मालूम पड रहे हैं!"

शारदा ने एक करुण मुस्कान ओठों पर लाकर कहा—"सिर्फ इतने ही निशान नहीं है, जयन्त बाबू! यह देखिए।" कहकर शारदा ने बाँह पर से कपडा हटा लिया।

जयन्त के मुख से एक चीख निकल गई। वहाँ का मास उड गया था और सारी बाँह सूजी हुई थी।

जयन्त के हृदय को मानो एक गहरी चोट लगी। वह कातर आँखों से शारदा की बाँह की ओर देखता रहा।

शारदा ने किंचित् करुण स्वर में कहा—"कई जगह, इससे भी

अधिक मास निकल आया है जयन्त बाबू, उन्हें मैं नहीं दिखा सकती।
यदि आप देख पाते, तो शायद और भी चकित होते ।"

जयन्त स्तब्ध रह गया।

कुछ क्षणों के बाद शारदा बोली—"संक्षेप में कारण भी सुन लीजिये ।"

शारदा ने शान्त स्वर में उन थोड़ी बातों का उल्लेख कर कहा—"और जो हो जयन्त बाबू, मैं इतनी बड़ी लज्जा नहीं पी सकी। मेरा सारा हृदय तिलमिला गया और आवेश में आकर मैंने 'हैवान' के बदले उन्हें एक अपशब्द कह दिया। खैर, उस अपशब्द के लिये परलोक में जो दण्ड मिले, मैं सिर झुका कर स्वीकार कर लूँगी। सती की श्रेणी से मैं अलग कर दी जाऊँ, यह भी मुझे कबूल है किन्तु मेरे सम्मुख यदि स्वयं ईश्वर भी इस रूप में आते, तो मरते दम तक मैं उन्हें घृणा करती जाती।"

मानव के कृत्य पर जयन्त घृणा से सिकुड़ा जा रहा था। अपने रोष को वह न छिपा सका। निकल पड़ा—"कुत्ता कहीं का! बेहया!"

शारदा ने मुस्करा कर करुण स्वर में कहा—"मैंने भी ठीक यही कहा था, जयन्त बाबू! इसी के परिणाम-स्वरूप हण्टर से मेरा मांस निकाला गया!"

जयन्त कुछ देर तक अवाक् बैठा रहा। वह शारदा के मुख पर अपनी आँखें गड़ाये था। बहुत-सी बातें उसके मस्तिष्क में चक्कर काट रही थीं नारी की असमर्थता का यह जो वीभत्स रूप सामने है, इसके कारण मन में न जाने एक कैसी तिक्तता भर आई है! न जाने एक कैसी ज्वाला, एक कैसी सिहरन उसके सारे शरीर में व्याप्त हो रही है।

जयन्त सोच रहा था, इस शारदा का निर्माण क्या इसीलिए हुआ था? क्या इसीलिए इतनी रूपराशि बटोर कर वह भूतल पर आई थी? क्या उसके नारीत्व का इससे अधिक मूल्य नहीं है?

नीचे से नौकर ने आवाज लगाई—"बाबू, गाड़ी का वक्त हो रहा है। मैं ताँगा ले आया हूँ।" दोनों चुपचाप उठ खड़े हुए।

रास्ते भर वे चुप रहे। कोई किसी से नहीं बोला। स्टेशन पहुँच कर जयन्त ने इण्टर क्लास के दो टिकट लिये। गाड़ी में विशेष भीड़ नहीं थी। गिने-चुने चार पाँच व्यक्ति थे।

आकर वे खिड़की के पास वाली बेञ्च पर बैठे रहे। यात्रियों ने कुतूहल भाव से इनकी ओर कुछ क्षणों तक देखा, फिर अपने में व्यस्त गये।

जयन्त ने विहगम दृष्टि से डिब्बे के लोगों को देखा। सामने की सीट पर एक बङ्गाली युवक और युवती थी। सम्भवत वे पति-पत्नी हों। तीसरी बेञ्च पर एक दुबले-पतले गुजराती थे। उनके पास ही एक मुसलमान सज्जन थे, जो उर्दू का कोई अखबार पढ़ने में मशगूल थे।

जयन्त का मन वितृष्णा से भरा था। कल से वह उद्विग्न है। कल की पीड़ा अभी ताजी है। रात नींद नहीं आई थी, इस कारण आँखें भी कुछ लाल हो गई हैं।

शारदा का मुख भयानक रूप से अवसन्न है। देह की पीड़ा से वह जली जा रही है। कल की घटना प्रत्येक क्षण आँखों के सम्मुख नाचती है। रात भर वह दर्द में तड़पती रही है। कराह कर मन ही मन उसने अपने लिए ईश्वर से मौत की प्रार्थना की है। किन्तु ईश्वर न्यायी है। अकारण ही वह किसी को मौत नहीं देता।

आज चौबीस घण्टे हो गये, उसने न अन्न छुआ है, न पानी। उस घटना के बाद दृढ़ स्वर में वह बोली—"मैं मायके जाऊँगी। मुझे पहुँचाया जाय, नहीं तो बिना खाये-पीये ही जान दे दूँगी।"

आबकारी के दारोगा की शान अलग है। गरज कर वह बोला—"तेरे टाइपिस्ट बाप के पास तुझे पहुँचाने का मुझे वक्त नहीं है।"

और अन्त में जयन्त पर दृष्टि गई। आबकारी के दारोगा की शान बनी रही।

एक्सप्रेस गाड़ी स्टेशन पर स्टेशन पार कर रही थी। सभी व्यक्ति चुप थे।

बङ्गाली युवक ने जयन्त से बातें करने की कोशिश की। अँगरेजी में पूछा—"मैं समझता हूँ, आपकी पत्नी कुछ रुग्ण हैं ?"

इतना अँगरेजी समझने की योग्यता शारदा में थी। उसके चेहरे पर एक करुणा मिश्रित लज्जा दौड़ गई। जयन्त भी विचित्र स्थिति में पड़ा। बात बढ़ने के भय से सिर हिला कर उसने स्वीकार कर लिया।

शारदा गम्भीर मुद्रा से खिड़की के बाहर देख रही थी। बङ्गाली युवक और युवती अगले स्टेशन पर उतर गये। डिब्बे में अब और भी कम यात्री रह गये।

बाहर हलकी बूँदें पड़ने लगी थीं। आज सुबह से आकाश मेघाच्छन्न था। बूँदें पहले हलकी पड़ीं, बाद में वे तेजी से बरसने लगीं।

. कितने खेत और खलिहान घर नगर डगर.. असंख्य मनुष्य . असंख्य बूँदें

शारदा को यह रिमझिम बड़ी अच्छी मालूम हुई। मन कुछ शीतल लगा।

शारदा सोच रही थी—नियति का यह कैसा निष्ठुर प्रहार है ? जयन्त ठीक उसकी बगल में बैठा है, किन्तु वास्तव में वह उससे कितनी दूर है ?

और जयन्त भी गम्भीर होकर कुछ सोचने लगा है। उसके चेहरे को देखने से लगता है, जैसे वह कोई बहुत ही गम्भीर समस्या को सुलझा रहा है।

शारदा ने एक बार जयन्त के गम्भीर चेहरे की ओर देखकर पूछा—"आप क्या सोच रहे हैं ?"

जयन्त ने कुछ भी उत्तर नहीं दिया।

गाड़ी मुगलसराय आकर रुकी। जयन्त ने एक बार तीक्ष्ण दृष्टि से

शारदा की ओर देख कर कहा—"यहाँ उतरना होगा।"

शारदा चौंक गई। जयन्त के गम्भीर चेहरे की ओर चकित दृष्टि से देख कर बोली—"यहाँ उतरना होगा? क्या गाड़ी बदलनी होगी?"

"हाँ।" कह कर जयन्त ने कुली को इशारा किया। शारदा चुपचाप उतर गई। वर्षा हो रही थी। पानी का एक झोंका आया और शारदा को भिगो गया। बड़ी राहत मालूम हुई। लगा, जैसे कोई उसके उत्तप्त हृदय पर शीतलता बिखेर गया हो।

इण्टर क्लास का 'वेटिङ्ग रूम' बाहर से बन्द था। जयन्त ने सेकेण्ड क्लास के 'वेटिङ्ग रूम' मे सामान रखवाया।

दोनों कुछ-कुछ भीग गये थे। हठात् जयन्त बोला—"मैं कुछ खाने को ले आता हूँ।"

शारदा एक दीर्घ साँस लेकर कुरसी पर बैठ रही। गाड़ी सीटी देकर पुन आगे बढ़ गई।

थोड़ी देर में जयन्त लौटा। उसके हाथ में खाने-पीने की कुछ चीजें थी। वह बोला—"लो भई, आओ।"

जयन्त का स्वर सुनकर शारदा को रोमाञ्च हो आया। उसने जयन्त के मुख पर एक तरह का सन्तोष देखा। अनिच्छा रहते हुए भी वह जयन्त की बात का प्रतिवाद न कर सकी।

खाते-खाते शारदा ने पूछा—"अभी कितने बज रहे हैं?"

'रिस्ट-वाच' की ओर देख जयन्त बोला—"यही दो के करीब।"

"गाड़ी कै बजे मिलेगी?...उस बार तो गाड़ी नहीं बदलनी पड़ी थी।" शारदा बोली।

जयन्त ने स्थिर दृष्टि से शारदा की ओर देखा। फिर किञ्चित म्लान मुस्कराहट के साथ पूछा—"तुम कुछ सन्देह कर रही हो, शारदा?"

शारदा का हाथ रुक गया। जयन्त ने प्रथम बार उसे इस तरह सम्बोधन किया है! सम्बोधन हृदय को छेद गया। वह नहीं सोच सकी

कि वह हँसे या रोये ! सारा शरीर पुलकित हो उठा । हृदय धड़क उठा ।

जयन्त ने स्निग्ध दृष्टि से शारदा की ओर देखकर पूछा—"तुम मुझसे कुछ भय कर रही हो शारदा ?"

शारदा का निष्प्रभ मुख चमक उठा । . हाय ! जिसे पाकर उसका जीवन धन्य हो सकता था, जिसे पाकर दुनिया की ओर कोई भी आकांक्षा, कोई भी कामना शेष नहीं रह सकती थी, आज वह पूछ रहा है—'तुम मुझ से कुछ भय कर रही हो शारदा ?'

जयन्त ने उसी स्वर में कहा—"दुनिया की दृष्टि में तुम मेरी 'भाभी' हो सकती हो, किन्तु मेरे लिये तुम भाभी से बहुत कुछ ऊपर हो शारदा । 'भाभी' कहने की अपेक्षा न जाने तुम्हें 'शारदा' कहने की क्यों बार बार इच्छा होती है । तुम मुझसे छोटी हो, इसलिये 'आप' के घेरे में भी मैं दूर रहना चाहता हूँ ..अरे, तुम मुझे इस तरह क्यों देख रही हो ? .."

शारदा की आँखों में आँसू आ गये । मुश्किल से वह कह सकी—"जयन्त बाबू, मेरे कपाल में जो बात नहीं है, उसके लिये सोच कर मैं क्यों अपना सिर धुनूँ ?"

"शारदा !" जयन्त सिर्फ इतना कह सका ।

शारदा अपने को सँभाल कर बोली—"जयन्त बाबू, जो बात कल्पना के बाहर की है, उसके लिये आदमी का चिन्तित होना क्या ठीक है ?"

जयन्त अवाक् बैठा था ।

शारदा ने कहा—"यह क्या, आपने खाना क्यों बन्द कर दिया ?"

जयन्त ने उठते हुए कहा—"इच्छा नहीं हो रही है ।"

दोनों कुछ देर तक मौन बैठे रहे । शारदा ने ही निस्तब्धता भंग की—"आपने बतलाया नहीं जयन्त बाबू, कि गाड़ी कै बजे मिलेगी ?"

थके स्वर में जयन्त ने कहा—"अभी चार-पाँच घण्टे की देर है ।"

'ओ !' कह कर शारदा चुप हो गई ।

कोई कुछ बोलना नहीं चाहता था। दोनों अपने भीतर क्लान्ति का अनुभव कर रहे हैं।

थोड़ी देर बाद शारदा ने चौंक कर कहा—"अच्छा, जयन्त बाबू, अपनी चन्द्रा के बारे में एक दिन कहने को आपने वादा किया था . "

जयन्त कुछ क्षण तक शारदा के मुख की ओर देख म्लान मुस्कराहट के साथ बोला—"चन्द्रा की कहानी सुनोगी शारदा ?"

"हाँ, जयन्त बाबू !" शारदा के स्वर में उत्साह था।

"हाँ, अब कहानी निःशेष भी हो गई है। पहले शायद कुछ अधूरी रहती ! कल ही तार आया था कि चन्द्रा अब इस दुनिया में नहीं है !"

शारदा के मुख से एक हलकी चीख निकल गई।

जयन्त के ओठों पर वेदना मूर्त्त हो उठी। वह बोला—"सुनो, मैं कहानी शुरू कर रहा हूँ ।"

स्थिर, मूक, अवाक् और अन्त में जड़ होकर शारदा चन्द्रा की कहानी सुनती रही . सुनती ही रही

जयन्त ने कहानी का अन्त करते हुए कहा—"चन्द्रा को देखकर ही मैंने एक दिन कह दिया कि यह एक दुर्घटना है ! शारदा, तुम क्या सोचने लगी हो ? "

शारदा चिहुँक गई। उसके चिन्तन में व्याघात हुआ। शारदा की आँखों के आगे एक तस्वीर आ गई थी। उस तस्वीर को शारदा मुग्ध और चकित दृष्टि से देख रही थी। उसने जयन्त की ओर देखा। जयन्त ने उसी स्वर में फिर कहा—"मास्टरजी की लाश को देखकर ही चन्द्रा की मौत हो गई थी, यह मैं आज अनुभव कर रहा हूँ, शारदा ! तब मैं अँधेरे में था। लाश को देखकर चन्द्रा जो मूर्च्छित हुई थी, उसे मैंने नारी-हृदय की दुर्बलता मात्र कह कर सन्तोष कर लिया था। किन्तु आज मुझे सोचना पड़ता है कि यह दुर्बलता ही चन्द्रा की सबसे बड़ी दृढ़ता थी.. ।"

शारदा क्या सोच रही है?...वह क्यों बारबार सिहर [illegible] है?
लगता है, जैसे चन्द्रा तो उसी की प्रतिच्छाया थी!

जयन्त बोला—"एकदिन शरत् बाबू के 'गृहदाह' नामक उपन्यास में मैंने पढ़ा था कि अचला को सुरेश इतना प्यार करता था कि उसे व्यक्त करने पर वह बार बार कुण्ठित हो जाता था। जानती हो शारदा, आज मैंने सुरेश का ही काम किया है।"

शारदा बात कुछ नहीं समझ सकी।

"'गृहदाह' तुमने नहीं पढ़ा होगा। तब इतनी कोई बात समझ लो कि सुरेश ने अचला को उसके पति के हाथ से छीनने की चेष्टा की थी। हमारी कहानी और सुरेश की कहानी में भेद सिर्फ इतना है कि अचला अपने स्वामी महिम को बहुत चाहती थी।"

शारदा कुछ समझ रही है, कुछ नहीं भी।

जयन्त बोला—"तुम मेरा साथ दोगी शारदा? पर तुम्हारा चेहरा ऐसा क्यों हुआ जा रहा है? तुम शायद सोच रही होगी कि तुम्हें अकेले में पाकर मैं कोई हरकत करना चाहता हूँ। किन्तु जयन्त को ऐसा समझ कर तुम भूल करोगी। जयन्त स्वयं तिल तिल कर मरना जानता है, किन्तु दूसरे की खुशी छीन कर हँस नहीं सकता।"

शारदा के भीतर यह कैसा तूफान है?

"हमारी रूढ़ियों ने, हमारे समाज ने अपनी वेदी में चन्द्रा और शेखर की बलि तो ली, अब सोचता हूँ कि क्या बलि की यह संख्या बढ़ नहीं रही है?"

शारदा मूक बैठी रही।

"शारदा, तुम्हें जिस दिन देखा, मैं काँप गया। मैं सोचने लगा, यह दूसरी दुर्घटना है!"

यह जयन्त आज पूरा असहिष्णु बन बैठा है। वह दृढ़ स्वर में कह रहा है—'चलो, आहुति की सामग्री अपने को न बनने दो। अपने

पैरों मे शक्ति लाओ। अपने मन मे दृढ़ता लाओ। तोड डालो इन झूठे आडम्बरों को। जिसने तुम्हारी छाती पर मूंग दली है, उससे बदला लेने की ताकत तुम अपने मे लाओ।"

शारदा की आँखों मे आँसू छलक ही आये। वह सिर्फ इतना कह सकी—"जयन्त बाबू!"

जयन्त दृढ़ स्वर में कह रहा था—"आज सुबह तुम्हारा कारण सुनकर मै इसी निश्चय पर पहुँचा हूँ कि तुम ऐसे 'देवता' को ठोकर मार दो। इन झूठे सस्कारो को पैर से रौद कर आगे बढ़ो। आज तुम्हारा मूल्य इतना सस्ता नही है कि कोई तुमसे खिलौने की तरह खेले आँखें खोलकर तुम देखोगी, तो देख सकोगी कि तुम्हारी कड़ियाँ टूट रही है। तुम्हारा मूल्य बढ़ा है। अपने मूल्य को समझने की चेष्टा करो शारदा...।"

शारदा अवसन्न है। वह अपनी बडी-बडी सजल आँखें फैलाकर जयन्त की ओर देखने लगी।

जयन्त बोले—"इन आँसुओं को तुम पोछ डालो शारदा! आँसू बहाते-बहाते ही तुम स्वय एक दिन उसमे बह जाओगी। चलो शारदा, तुम मेरा साथ दो। आज इसीलिये मैने गाडी छोड दी है। तुम्हे खोकर, मैं जीवन में कुछ न कर सकूँगा। चन्द्रा की मौत और तुम्हारी मौत में कोई विशेष अन्तर नही देख रहा हूँ। भीतर से तुम मरी हो। ऊपर के चमडे पर भी माधव भैय्या के हण्टर ने ये नीली लकीरें खींच रखी है...!"

'ओ जयन्त बाबू!' शारदा जयन्त के पैरो के पास लोट पडी—"अब मैं और न सह सकूँगी, जयन्त बाबू! मेरे मन में आपकी जो मूर्ति है, मैं उससे अधिक नही चाहती..."

जयन्त की आँखें छलछला आईं। वह बोला—"तुम मुझे बहुत ऊँचा सम्मान दे रही हो, शारदा ..!"

— समाप्त —

शारदा ने जयन्त के पाँव पकड़ कर ही कहा—"जयन्त बाबू! हृदय तो मैं आपकी पूजा में खो चुकी हूँ। मैं और कुछ नहीं चाहती। आपके पैरों की धूल लेकर मैं जीवन काट दूँगी। मरते समय भी यह कामना करती रहूँगी कि अगले जन्म में मैं आपको अपना तन और मन दोनों सौंप सकूँ। इस जन्म में मैंने सिर्फ मन ही अर्पित किया है। तन पर तो दूसरे का अधिकार है, जयन्त बाबू...!"

जयन्त ने झुक कर शारदा के हाथ अलग किये। वह गम्भीर होकर बोला—"शारदा, मैं भी इससे अधिक चाहकर गलती नहीं करूँगा।"

दोनों कुछ क्षण तक मौन रहे। शारदा की आँखों से आँसू अब तक निकल रहे थे।

जयन्त ने आँखें मींच कर कहा—"भावुकता में आकर मैं तुम्हें यहाँ ले आया। मैंने सोचा था, आज तुम्हें कहीं दूर ले जाऊँगा—इतनी दूर ले जाऊँगा जहाँ एक नया ससार बस सकेगा। अब मैं अपनी भूल के लिए माफी चाहता हूँ, शारदा।"

शारदा ने अपने को स्थिर कर कहा—"आज भी इतना साहस मैं अपने में नहीं पाती कि इस इतने बड़े सुख को सहेज लूँ। दुख तो मेरे जन्म का साथी है, जयन्त बाबू।" शारदा के अधरों पर एक फीकी मुस्कराहट दौड़ गई—"एक कगाल 'टाइपिस्ट' की लड़की का पति आबकारी का दारोगा है, इसे ही क्या दुनिया ईर्ष्या की दृष्टि से नहीं देखती, जयन्त बाबू?"

जयन्त कुछ भी उत्तर न दे सका।

"मेरे मन की गति का पता यदि दुनिया जान जाय, तो क्या घृणा और रोष से वह मेरा गला नहीं घोट देगी, जयन्त बाबू?"

जयन्त कुछ क्षणों तक चुप रहा। एकाएक बोला—"अच्छा शारदा, तुम्हें मुझ पर विश्वास है?"

शारदा ने दृढ़ स्वर में उत्तर दिया—"आप पर से जिस दिन विश्वास उठ जायगा, जयन्त बाबू, उस दिन दुनिया में मैं न रह

सकूँगी। आपको ही देखकर तो संतोष है कि 'देवता' के दर्शन भी मैंने किये है।"

एकाएक बन्द दरवाजे पर खटका हुआ। जयन्त ने द्वार खोल कर देखा—एक मारवाड़ी सज्जन अपने परिवार के साथ खड़े है। उन्होंने नम्र स्वर में कहा—"माफ कीजिएगा। और सभी कमरे भरे हैं।"

जयन्त ने कहा—"कोई बात नहीं, चले आइये।" अपने परिवार के साथ मारवाड़ी सज्जन भीतर आ गये। उनके साथ एक स्थूलकाय स्त्री थी जिनका घूँघट आवश्यकता से अधिक लम्बा था।

बाहर बूँदा-बाँदी हो रही थी।

जयन्त चुपचाप बैठा दीवाल की ओर देख रहा था। दीवाल पर एक छिपकली किसी कीड़े का पीछा बड़ी सावधानी से कर रही थी। मनोयोगपूर्वक जयन्त उस शिकारी की ओर देख रहा था। सम्भवतः वह सोच रहा था—'नियति क्या इसी तरह मनुष्य का पीछा करती है?'

(१३)

गाड़ी आने में अभी भी देर है।

जयन्त आँखे बन्द कर सोने का उपक्रम कर रहा है। जलती आँखे कुछ पीड़ा ही देती है। शारदा अन्यमनस्क-सी मारवाड़ी महिला की ओर देख रही है। वह अपनी लड़की से जो बातें कर रही है, उसका आशय शारदा समझ लेती है। मारवाड़ी सज्जन एक आराम-कुरसी पर बैठे-बैठे सो गए हैं। उनको नींद इतनी जल्द आ गई कि जयन्त को चकित रह जाना पड़ा।

गाड़ी आने में अभी दो घण्टे की देर है। बाहर नहीं जाया जा सकता। वृष्टि जोर से हो रही है।

शारदा की ओर देखकर मारवाड़ी महिला ने पूछा—"कहाँ जायेंगी?'

"पटने। और आप?" शारदा को खुशी हुई कि इस महिला से बातें हो सकती है।

"हम लोग कलकत्ता जा रहे हैं।"

'कलकत्ता' शारदा मानो चौंक गई है। कलकत्ता वह नहीं गई है। 'टाइपिस्ट' पिता के पास इतने अधिक पैसे नहीं रहने कि वह अपने बच्चों को कहीं घुमाने ले जाय। वह बहुत ही कम जगह जा पाई है। कलकत्ता हिन्दुस्तान का सबसे बड़ा शहर है—उसने बचपन में पढ़ा था।

शारदा को चुप देखकर महिला ने प्रश्न किया—

"आपके लड़के नहीं है?"

शारदा के मुख पर स्त्री-सुलभ लज्जा दौड़ गई। सिर हिला कर उसने अस्वीकृति जताई।

मारवाड़ी महिला ने जयन्त की ओर संकेत कर पूछा—"आपके पति नौकरी करते है?"

जयन्त अँगुलियों से आँखें मींच कर आराम-कुर्सी पर लेटा था। अन्यमनस्क हो वह इनकी बातें सुन रहा था।

शारदा को चुप रहते देख महिला ने कहा—"घर पर कुछ कारबार है?"

मुश्किल से शारदा इतना ही जवाब दे सकी—"हाँ।"

कुछ क्षणों तक चुप्पी रही। महिला के कंधे पर झूलती एक चार-पाँच साल की प्यारी बच्ची थी। वह अपनी भोली आँखों से शारदा की ओर एकटक देख रही थी।

शारदा ने मुस्करा कर कहा—"इधर आओ।"

लड़की लजाकर माँ से और भी चिपट गई।

समय किसी तरह कटा। गाड़ी कुछ लेट आई।

जयन्त इण्टर क्लास में शारदा के साथ जा चढ़ा। मारवाड़ी सज्जन अपने परिवार को सम्भवत जनाने डिब्बे में बैठाकर स्वय एक दूसरे डिब्बे में बैठ गये।

डिब्बे में निर्धारित की हुई संख्या से अधिक पैसेंजर थे। तीन और

थी, बाकी सब मर्द। कुछ मर्दों ने अपने स्वभाव के अनुसार आँखें बचा कर शारदा को देखा। एक सज्जन तो बड़ी देर तक उसे घूरते रहे।

गाड़ी खुली। डिब्बे के बाहर सिर निकाल कर शारदा अन्यमनस्क हो देख रही थी। पानी बरसना बन्द हो गया था। गाड़ी में रोशनी हो गई थी। क्वार्टरों की बत्तियाँ भी झलमला रही थीं।

गाड़ी अपनी पूरी गति के साथ जा रही थी। वह कितने खेत कितने खलिहान छोड़ती भागी जा रही थी! बादलों को फाड़कर चन्द्रमा निकला। वह बड़ा प्यारा लग रहा था।

शारदा दूर की दुनिया में खो गई थी। एक सज्जन जयन्त को छेड़ कर कुछ बातें करना चाहते थे, किन्तु जयन्त की ओर से उत्साह न पाकर वे निराश हो चुप रह गये।

शारदा का मन उड़ा जा रहा था। मन तो सदा उड़ा ही करता है। मन को बाँधना कठिन है।

.. पुजारिन ने चकित होकर देखा, दानव के बाद एक देवता आया।

देवता ने कहा—'देवि, मैं आ गया!'

पुजारिन अवाक् रह गई। हर्ष और विषाद से उसकी आँखें भर पड़ीं। वह मुग्ध होकर देवता को देखती रह गई।

देवता ने मुस्करा कर कहा—'देवि, तुम मुझे नहीं अपनाओगी मैं खड़ा जो हूँ!'

अज्ञान और निराशा के कारण वह रो पड़ी। रुँधे गले से बोली—'तुम बहुत देर से आये, देव!'

देवता कुछ सोचता रहा, अन्त में गम्भीर होकर बोला—'कोई चिन्ता नहीं देवि! देर के लिए पश्चात्ताप मत करो।'

पुजारिन के हाथ रिक्त थे; हाथ में माला भी न थी। अपनी दीनता और हीनता का अनुभव कर वह मानो धरती में गड़ गई। बोली—'किन्तु अब रह ही क्या गया है, देव?'

'क्यों, क्या हुआ ?' देवता की मृदुल आवाज आई। पुजारिन की व्यथा सीमा लांघ गई। सुबक कर बोली—'एक दानव आया था। उसने जबरदस्ती मेरे हाथों की माला छीनकर अपने गले में डाल ली। मेरी पूजा के अक्षत बिखेर दिये, धूप-दीप को पैरों से रौंद कर अट्टहास कर उठा।'

देवता बहुत देर तक गम्भीर भाव से सोचते रहे। फिर बोले—'चलो देवि, मैं तुम्हें इसी दानव से तो छुड़ाने आया हूँ।'

'दानव से !'

देवता ने स्थिर स्वर में कहा—'यह दानव एक दिन तुम्हें भी रौंद देगा, देवि ! इसी दानव के पंजे से तुम्हे बचाने तो दौड़ा आ रहा हूँ।'

पुजारिन ने अपने पैरों की ओर सकेत कर कहा—'देव, ये बेड़ियाँ देखो।'

देवता स्तब्ध रह गए। बेड़ियों पर अब तक उनको दृष्टि नहीं गई थी। देखा तो उन्हें भी सिहर उठना पड़ा। बेड़ियाँ काफी शक्त थीं।

देवता ने कुछ फिर सोचकर कहा—'देवि, मैं इन बेड़ियों को काट दूँगा।'

पुजारिन रुँधे गले से बोली—'हाय देव ! तुम नहीं जानते, उसने मुझसे शपथ ले ली है !'

'शपथ ?' .

'हाँ। मडप के नीचे, सात भाँवरों के बीच, उसने मुझसे शपथ ले ली, कि मैं किसी और को अपनी पूजा नहीं दूँगी !'

देवता का चेहरा म्लान हो गया। उनके ओठों की मुस्कराहट लोप हो गई। आँखों में आँसू भर वे बोले—'तो मैं चलूँ, देवि !'

पुजारिन किस मुह से कहती ? हाय ! वह किस तरह कहती कि तुम चले जाओ देव ! जिसकी एक झलक पाकर उसके सारे शरीर में आनन्द की घटा उमड़ आई है, यदि वह उसे आजन्म अपने ही सम्मुख

रख पाती ! पुजारिन ने धुधली आँखों से देखा, देवता लडखडाते पैरों से चले जा रहे है. चले ही जा रहे हैं ..

.. शारदा की आँखो से दो बूँद आँसू निकल कर गिर ही पडे।

कई स्टेशनों के बाद गाडी पटना जकशन पर आ लगी।

जयन्त ने कहा—"उतरो शारदा !"

दोनों उतर गये। रात अभी बहुत ज्यादा नही हुई थी। गाड़ी बुला कर जयन्त ने पूछा—"किस मुहल्ले जाना होगा शारदा ?"

"लोहानीपुर।" आहिस्ते से शारदा बोली।

गाडी चुपचाप चलने लगी। प्राय: आध घण्टे के बाद गाडी लोहानीपुर में घुसी। शारदा ने बैठे गले से कहा—"उस खम्भे के पास खड़ा करना।"

गाडी वहाँ जाकर रुक गई। जयन्त अब तक नहीं सोच पाया था कि वह शारदा के पिता से क्या कहेगा ?

रामनाथजी सम्भवत. खाना खा कर बाहर टहल रहे थे। गाडी उनके दरवाज़े पर लगी है, यह देख कर कुछ अचरज हुआ। जाकर देखा, तो शारदा एक युवक के साथ उतर रही है। वे कुछ क्षणों तक भौचक रह गये।

जयन्त ने 'नमस्ते' कर कहा—"मै माधव भैय्या का ममेरा भाई ..।" किन्तु जयन्त बात पूरी भी न कर पाया था कि वह एकटक रामनाथजी को देखने लगा। वह सोच रहा था, यह चेहरा तो कहीं देखा है !

रामनाथजी भी जयन्त को देखकर ठिठक गये। यह तो वही मिर्जापुर वाला लडका मालूम पडता है ! जयन्त का परिचय पाकर उनका अचरज थोड़ा कम हुआ।

शारदा ने उतर कर पिता के चरण छुए। हर्ष से पुलकित हो, रामनाथजी बोले—"सुखी रहो बेटी...तुझे देखने की बडी लालसा थी।"

आवाज सुनकर घर के लड़के निकल आये। शारदा को देखकर वे उससे लिपट गये। शारदा की आँखों में आँसू छलक आये।

गार्डी को विदा कर सब कमरे में चले आये। रेखा की ओर देख रामनाथजी बोले—"बेटी, तुझे थोड़ी और तकलीफ उठानी होगी।"

रेखा ने हँसकर कहा—"ऐसी तकलीफ मैं रोज उठा सकती हूँ, बाबूजी!" कहकर वह रसोई-घर में घुसी। कुछ चपातियाँ बना डालीं। तरकारी अभी भी बच रही थी।

रामनाथजी ने शारदा के निष्प्रभ मुख को देख पूछा—"क्या तबीअत खराब थी बेटी...?"

बातें अभी न बढ़ने देने के लिए शारदा ने संक्षिप्त उत्तर दिया—"हाँ, बाबूजी!"

खाना-पीना पूरा हुआ। बाहर के कमरे में चारपाई बिछी थी। शारदा ने बिछौना करते हुए कहा—"अब आप सो रहिये। काफी थके होंगे।"

जयन्त बिना कुछ बोले जाकर पड़ रहा। वह सचमुच बहुत क्लान्त और थका था। थोड़ी ही देर में उसे नींद आ गई।

रामनाथजी और भाई-बहिन बहुत देर तक शारदा को घेर कर बातें करते रहे। पिता के प्रश्न का उत्तर देते हुए शारदा ने कहा—"हाँ, कुछ अनबन के ही कारण यहाँ आई हूँ। अकेले रहते-रहते जी ऊब गया था।"

पिता समझदार थे। बहुत कुछ समझ गये। अपनी व्यथा को छिपा कर लड़कों से बोले—"अरे, तुम लोग अपनी दीदी को सोने भी दोगे या रात भर घेर कर बैठे ही रहोगे?.. शारदा, मैं भी बाहर के कमरे में सोने जा रहा हूँ।" और इतना कह वह चले गये।

× × ×

दूसरे दिन जयन्त की जब नींद टूटी, तो दिन काफी निकल आया था। कल की घटनाएँ अभी तक मस्तिष्क में चक्कर काट रही थीं।

नहा-धोकर वह कुछ स्वस्थ हुआ। शारदा हाथ में नाश्ते की तश्तरी लेकर पहुँची। किंचित् मुस्करा कर बोली—"गरीब आदमी अपने मेहमान का स्वागत सिर्फ खुले दिल से ही कर सकता है, जयन्त बाबू और कोई ऐसी चीज उसके पास नहीं होती, जो वह इतनी उदारता से दे सके"

बात सुनकर जयन्त भी मुस्कराया। बोला—"दिल की दुनिया क्या धन की दुनिया से छोटी है, शारदा?"

शारदा चुप रह गई।

जयन्त बोला—"मैं दोपहर की गाड़ी से लौट जाऊँगा, शारदा!"

"इतनी जल्दी?" शारदा का चेहरा कुछ उतर आया।

जयन्त ने शान्त स्वर में कहा—"हाँ, शारदा! मुझे जाना ही होगा।"

रेखा किवाड़ के पल्ले के पीछे खड़ी होकर झाँक रही थी। शारदा ने मुस्करा कर कहा—"आओ रेखा, शरमाती क्यों हो?"

सकुचाती रेखा भीतर आ गई।

जयन्त ने देखा, शारदा की तरह ही मुख की सुन्दर आकृति है। वैसी ही स्निग्ध आँखें हैं। चौदह-पन्द्रह साल की यह लड़की मानो शारदा की ही छाया है! मुस्करा कर जयन्त बोला—"यह तो ठीक तुम्हारी ही तस्वीर है, शारदा!"

रेखा की ओर स्नेह भरी आँखों से देख शारदा बोली—"आखिर मेरी सहोदरा है न, जयन्त बाबू!"

थोड़ी देर तक और बातें होती रहीं। पिता के पुकारने पर रेखा भीतर चली गई।

दोनों मौन रहे।

एकाएक शारदा गम्भीर होकर बोली—"आपके चले जाने पर आपकी तस्वीर तो मेरे पास रहेगी ही जयन्त बाबू !"

"तस्वीर !" जयन्त बात न समझ सका।

शारदा ने मुस्करा कर कहा—"ठहरिये, लाती हूँ।"

रामायण ढूँढ़ते देर न लगी। वह सुरक्षित रूप से पिता की आलमारी में रक्खी थी। फोटो भी मिल गया। कुछ क्षणों तक वह फोटो को देखती रही। फिर जयन्त के पास आकर बोली—"यह देखिए, मैं तो आपको रोज देख सकूँगी।"

स्वर में एक थर्राहट थी। जयन्त के मुख पर भी व्यथा की एक लहर दौड़ गई। उठकर वह बाहर चला आया।

रामनाथजी आफिस जाने की तैयारी कर रहे थे। बोले—"आप क्या सचमुच आज चले जाइयेगा ?"

"जी।" जयन्त ने संक्षिप्त उत्तर दिया।

जयन्त और रामनाथजी खाने बैठे। शारदा खाना परोस गई। रेखा पंखा झल रही थी।

रामनाथजी ने कौर उठाते हुए कहा—"एक दिन मैं आपके घर जा चुका हूँ। और यह अचरज की ही बात है कि मैं आज आपको अपने यहाँ पा रहा हूँ।"

जयन्त ने कुछ लज्जित होकर कहा—"आपके आने पर तो मैं उठकर 'नमस्ते' भी न कर सका।"

रामनाथजी खिलखिला कर हँस पड़े। बोले—"इससे क्या होता है भाई ! हृदय में प्रेम चाहिए !"

शारदा ने पिता की थाली की ओर देख कर पूछा—"थोड़ा साग दूँ, बाबूजी ?"

रामनाथजी हाथ से रोकते हुए बोले—"अरे, नहीं, नहीं, जयन्त बाबू को दो। ये तो कुछ खा नहीं रहे हैं।"

"बहुत खा चुका बाबूजी ! इतना स्नेह मुझे घर पर भी नहीं मिलता ।"

रामनाथजी आनन्द में विह्वल हो उठे । जयन्त का सम्बोधन उनके हृदय को छू गया । कुछ देर तक वे मौन रहे, फिर बोले—"तुम्हारी पढाई खतम हो गई ?"

स्नेह ने उन्हें 'तुम' ही कहने को विवश किया ।

"जी, एम० ए० का इम्तहान दे चुका हूँ ।"

"अब क्या करोगे ?"

"क्या करूँगा, यह अब तक नहीं सोच पाया ।" कह कर जयन्त मुस्करा पडा ।

खाने-पीने के पश्चात् टोपी उठाते हुए रामनाथजी बोले—"भाई, गुलामी ठहरी । आफिस जा रहा हूँ । शायद अब तुमसे भेंट न हो ।"

पाँच रुपये का एक नोट बढाते बोले —"यह रख लो ।"

जयन्त एक कदम पीछे हटकर चकित स्वर में बोला—"मैं क्या कोई बच्चा हूँ ?"

रामनाथजी मुस्करा कर बोले—"मेरे लिए तो बच्चे ही हो । तुम्हें लेना ही होगा ।"

किन्तु बहुत जिद करने पर भी जयन्त ने नोट लेना स्वीकार नहीं किया । रामनाथजी आफिस चले गए ।

थोडी देर बाद जयन्त बोला—"शारदा, अब मैं भी चलूँ ।"

शारदा चुप रही ।

"तुमने तो शायद अब तक खाना भी नहीं खाया ! जाओ, खा लो । तब तक ठहरूँगा ।"

शारदा मौन !

"जाओ भई, खा लो ।"

शारदा मुश्किल से बोल सकी—"खाने की इच्छा नहीं है ।"

उसका स्वर सुनकर जयन्त चौंक पड़ा ।

शारदा ने पूछा—"अब आपसे भेंट होगी ?"

जयन्त उत्तर मे कुछ न कह सका ।

शारदा ने कातर होकर कहा—"जान या अनजान मे जो भूल हुई हो, उसे आप क्षमा कर देंगे, जयन्त बाबू !"

जयन्त की आँखें भर आईं ।

"आप मेरा विश्वास करेंगे, जयन्त बाबू, इतना ही चाहती हूँ ।"

जयन्त कुछ क्षणों तक स्तब्ध रहा, फिर मनीबेग खोल कर कहा—"माधव भैय्या ने तीन नोट मुझे दिये थे । वे तुम्हें वापस कर रहा हूँ । खर्चे के बचे काफी रुपये मेरे पास हैं.. ।"

शारदा बोली—"मैं नहीं लूंगी . ।"

बीच में ही रोककर जयन्त बोला—"तुम मुझे इतना भी नहीं करने दोगी, शारदा ?"

उसके स्वर मे एक ऐसी व्यथा थी, जिससे शारदा निरुत्तर हो गई । नोट शारदा की अँगुलियों मे पड़े रह गये ।

रिस्ट-वाच की ओर देखकर जयन्त बोला—"समय हो रहा है, शारदा !"

शारदा, कुछ न कह सकी ।

"मुझे अब तुरन्त जाना होगा !"

शारदा फिर भी कुछ न कह सकी ।

"अरे, तुम चुप क्यों हो ?" जयन्त रुँधे गले से बोला ।

आँसुओं को आँचल से पोंछ शारदा ने झुक कर कहा—"चरणों की धूल भी तो लेने दीजिए, जयन्त बाबू !"

(१४)

समय तो काटे नहीं कटता ।

जयन्त अपने घर आ गया है, किन्तु मन शायद घर नहीं आया। उस दिन जब विदा की वेला चरणों की धूल लेने शारदा झुकी, तो कुछ गरम बूँदे उसके पैरो पर चू पड़ी । आज भी उनकी उष्णता जयन्त को चैन नही लेने देती । लगता है, मानो उसके पैर अब भी जल रहे है। माधव भैय्या को सक्षिप्त रूप मे उसने ख़बर दे दी कि उनका पहला और अन्तिम काम उसने कर दिया ।

घर मे बडी उदासी है । एक कान्ति थी, जिसे वह रिझा-खिझा सकता था, वह भी ससुराल चली गई । जयन्त के विवाह के बाद उसका भी ब्याह हुआ, और वह भी कुमारी से वधू बन कर चली गई ।

पुस्तकों और अख़बारो मे जी ऊब गया। मित्रों के चकल्लस अच्छे नही लगते । क्या करे वह ?

दिल्ली के गवर्नमेण्ट-हाउस मे एक सेक्रेटरी के असिस्टेण्ट की जगह खाली थी । वेतन भी बुरा नहीं था—एक सौ पचीस रुपये मासिक।

जयन्त ने सोचा—कुछ तो करना ही होगा ! बेकार बैठने से तो अच्छा ही है ।

एक बार मन में वितृष्णा आई । वह सरकारी नौकरी करेगा ? वह भी क्या अपनी प्रतिभा को पगु बना देगा ? . किन्तु विचार दब गया। विवेक ने कहा—यह तो उसका ध्रुव नहीं । एक अनुभव ही सही !

आवेदन-पत्र भेज दिया । उसमें जैसा लिखा जाता है, उसने लिखा। अपने सारे वजीफों की चर्चा की। बी० ए० मे यूनिवर्सिटी का रिकार्ड उसने तोडा है, यह भी उल्लेख कर दिया।

एक सप्ताह के भीतर जवाब आ गया—आप नियुक्त किये जाते है ।

जयन्त ने बेकारी का अनुभव तो नहीं किया है, किन्तु बेकारी का संसर्ग उसे अवश्य हुआ है । उनकी दीनता देख कर उसे म्ब्रियमान रह

आना पड़ा है। उसके अनेक ग्रेजुएट साथी दो वर्ष तक धूल-छानने पर
भी कोई नौकरी नहीं पा सके। यदि नौकरी मिलती भी है, तो तीस-
पैंतीस की।.. उसे घनश्याम की याद आई। घनश्याम कितना हँस
मुख और जिन्दादिल लड़का था। किन्तु बी० ए० की डिगरी के बाद
वह कहाँ कहाँ मारा फिरा, कितने फाके सहे और अन्त में मिली भी
तो चालीस की नौकरी! इस रकम से अधिक तो यूनिवर्सिटी की पढ़ाई
में लग जाता है। जो स्वयं पचास रुपये खर्च कर यूनिवर्सिटी में पढ़
चुका है, उसे चालीस रुपये में एक परिवार का पालन-पोषण करना
पड़ता है। घनश्याम के परिवार में उसकी माँ, एक अविवाहिता बहिन,
एक छोटा भाई, स्त्री और एक बच्ची है। अर्थात् सात आदमियों की
रोटी का प्रबन्ध चालीस रुपये में करना है। पिता की मृत्यु के बाद
एकाएक जो भार घनश्याम पर पड़ा, तो वह सूख कर आधा हो गया।
घनश्याम को देख कर जयन्त तो पहले पहिचान ही न सका कि यही
घनश्याम है। जिस घनश्याम का अट्टहास होस्टल-सुपरिण्टेण्डेण्ट के
कानों के परदे को छेद जाता था, आज उसके ओठों पर सूखी हँसी भी
नहीं है।

यह विडम्बना देख कर जयन्त के हृदय में एक चोट आई थी।
आज की हमारी शिक्षा हमें दो रोटियों के लिये भी मुँहताज बना देती
है। न जाने कितने घनश्याम के हौसले इसी विडम्बना की चट्टान से
टकरा कर चूर हो जाते हैं। कितने कलाकारों की प्रतिभा पूरी पनप
नहीं पाती! इस अभागे देश में कलाकार होना गुनाह है! जो छोटे
बच्चे अच्छी शिक्षा प्राप्त कर अपने मस्तिष्क से देश का गौरव बढ़ा
सकते थे, वे अपने नन्हे सिर पर ईंट ढोते हैं। ईंट ढोते ही ढोते उनका
सारा जीवन समाप्त हो जाता है! अभागे देश के ये नौनिहाल कभी
प्रकाश में नहीं आ पाते!.. हमारी यह आर्थिक विषमता आज सारे
समाज को कुतर रही है। हमारी ये रूढ़ियाँ हमें ही निगलती जा रही

है !...आज के ढाँचे के द्वारा आदमी जो चाहे कर सकता है। गरम मुट्ठी किसी को भी झुका सकती है।...जयन्त अवाक् रह जाता है जब चन्द चाँदी के टुकडों पर वह नारी के नारीत्व को बिकते देखता है। क्षोभ, लज्जा और ग्लानि से उसका सिर झुक जाता है।

आदमी ने नारी के नारीत्व को भी व्यवसाय का एक रूप दे रक्खा है। ठोक-बजा कर नारी कुछ घण्टों के लिये खरीदी जा सकती है। मानवता का यह घोर पतन उसे अपनी सभ्यता पर गर्व नहीं करने देता। आज का ढाँचा अत्यन्त कुत्सित है। आज की बनावट मन में घृणा पैदा करती है।

जयन्त नियुक्ति-पत्र लेकर पिता के पास गया। वे हुक्के का दम खींच रहे थे।

जयन्त ने स्थिर स्वर में कहा—"मैं दिल्ली जा रहा हूँ। मुझे एक नौकरी मिली है।"

"नौकरी? क्यों, इसके पहले तो तुमने कुछ नहीं कहा। कितना मिलेगा?" पिता ने पूछा।

"एक सौ पचीस!" जयन्त ने अन्यमनस्क होकर उत्तर दिया।

पिता चौंक कर बोले—"तुम अभी नौकरी करने क्यों जा रहे हो? तुम्हें यहाँ कोई तकलीफ है?"

"जी नहीं, यों ही मन बहलाने के लिये।"

पिता ने गम्भीर होकर कहा—"तुम क्या आई० सी० एस० में नहीं बैठोगे? पहले तो तुम्हारा इरादा था..।"

"अब नहीं है।" जयन्त ने शान्त स्वर में कहा।

पिता मौन रह गये। जयन्त पर उनकी बड़ी-बड़ी आशाएँ थीं। जयन्त सिर्फ एक सौ पचीस, पायेगा, यह सोचकर वे कुछ निराश-से लगे। इससे अधिक तो वे एक पेशकार होकर कमा लेते हैं। फिर इतना पढ़ने...इतने तगमे पाने का क्या नतीजा रहा?

वे बोले—"सब्र करो। तुम नौकरी के लिये इतने व्यग्र क्यों हो? इस बार आई० सी० एस० की परीक्षा में बैठो।"

जयन्त ने शान्त स्वर में कहा—"अभी मेरा इरादा दिल्ली जाने का है।"

"क्यों, दिल्ली में कोई खास बात है?" पिता ने चिडचिडा कर पूछा।

जयन्त चुप रहा।

"जाओ, जो मन मे आवे, करो।" पिता झल्लाकर बोले।

जयन्त जिद्दी है, यह वे जानते हैं। इसलिए जयन्त जब सूटकेस लेकर तैयार हुआ, तो उन्होंने कहा—"जयन्त, तू सदा लडकपन ही करता रहेगा? अच्छा, जा। पर देख बेटा, आदमी को सदा आगे देखना चाहिये। दिल्ली जा ही रहा है। आजकल आई० सी० एस० का इम्तहान वहीं होता है। बैठ जाना। भाग्य का क्या ठिकाना।"

पिता के चरण छूकर जयन्त आगे बढ गया।

× × ×

जयन्त दिल्ली आया। पहले तो एक होटल मे जाकर ठहरा, दूसरे दिन रहने के लिये जगह तलाश ली। वह एक बडी बिल्डिङ्ग थी। ऊपर-नीचे कई किरायेदार रहते थे। अधिकतर आफिस के ऐसे 'बाबू' थे, जो दिन भर बैल की तरह खटते थे और रात को सोने भर के लिये कमरे से नाता रखते थे। बगल ही मे किसी बंगाली सज्जन का 'बासा' था, जहाँ ये बाबू 'खाना' खाते थे। उस बिल्डिङ्ग मे परिवार के साथ रहनेवाले कम सज्जन थे।

जयन्त को एक प्रकार से तृप्ति हुई। बिना झंझट के काम हो गया। जगह देख कर थोडी खुशी हुई। स्थिर होकर उसने अपने पडोसियों को देखना शुरू किया। अगल-बगल दो और रूम थे। जयन्त ने बीच का सारा कमरा बीस रुपये पर लिया था। दायीं ओर के कमरे में

दो बंगाली युवक थे। बायीं ओर के कमरे में कोई प्रौढ़ मिश्रजी थे, जो लम्बा टीका लगाया करते थे। परिचय लोगों से शीघ्र ही हो गया। जयन्त को यह जान कर खुशी हुई कि ये सभी एक ही दफ्तर में काम करते हैं।

वे दो बंगाली युवक सम्भवतः कम वेतन पाते थे, इसलिये एक कमरे में साथ रहते थे। मिश्रजी भक्त सज्जन थे, और बड़ी देर तक पूजा पर बैठा करते थे। जयन्त को मालूम हो गया कि दोनों बंगाली युवक अविवाहित हैं और मिश्रजी अपने परिवार को घर पर ही रखते हैं।

नए आदमियों के बीच कुछ झिझक होना ही है। जयन्त भी कुछ दिन तक इस रोग से फँसा रहा, बाद में उसने अपने को अभ्यस्त बना लिया।

ऑफिस में काम तो अधिक रहा ही करता था, किन्तु जयन्त शीघ्र ही हाथ से आये काम को समाप्त कर लेता था। उसके सहयोगी जयन्त की कुशलता पर कुछ चकित थे। उन्हें यह तो मालूम हो गया था कि हमेशा वजीफा लेकर ही यह पढ़ता आया है, किन्तु उनका अनुमान यह नहीं था कि जिस तेजी से उसने अर्जी लिखता है, उसी तेजी से वह एक 'पर्सनल एसिस्टेंट' का काम भी कर सकेगा। तो हाँ ऑफिस के कुछ व्यक्ति उससे प्रभावित हुए और कुछ ईर्ष्या भी करने लगे। सेक्रेटरी उसके काम से बड़ा खुश था और यह निश्चित बात थी कि वह 'अपर ग्रेड' में ले लिया जायगा।

कुछ लोगों को जयन्त अभिमानी भी प्रतीत हुआ। वह न किसी से बोलता था, न और लोगों की तरह झुक कर अभिवादन किया करता था। उसके सहयोगी यह समझने लगे थे कि यह आदमी शुष्क है।

किन्तु इन लोगों के बीच एक ऐसे सज्जन थे, जो जयन्त की ओर बढ़े। नाम इनका ओमप्रकाश वर्मा था। ये 'अपर ग्रेड' में थे और जयन्त से उम्र में भी बड़े थे।

जयन्त इनकी सहृदयता से आकर्षित हुआ। एक दिन उन्होंने साथ पीने का भी प्रस्ताव कर दिया। अपने स्वभाव से प्रतिकूल होने पर भी जयन्त यह निमन्त्रण अस्वीकार नहीं कर सका।

सन्ध्या समय ओमप्रकाशजी जयन्त को अपने घर ले गये। परिवार से परिचय कराया। उनका परिवार आर्य-समाजी विचारों से प्रभावित है। अत. परदे की कोई गुंजाइश न थी।

अपनी माँ और स्त्री से परिचय कराने के बाद ओमप्रकाशजी बोले—"यह मेरी छोटी बहिन भारती है। इसी साल यहाँ की यूनिवर्सिटी से इसने बी० ए० किया है। तर्क में कोई इससे नहीं जीत सकता।"

ओमप्रकाशजी कह कर मुस्कराने लगे। जयन्त भी मुस्कराया।

भारती ने कृत्रिम रोष से कहा—"और आप ही कौन कम हैं?"

ओमप्रकाशजी हँसने लगे।

बहुत देर तक इधर-उधर की बातें होती रहीं। जयन्त ने भारती की ओर देखा—उन्नीस-बीस की उम्र। कालेज-शिक्षा की जो छाप और लड़कियों पर रहती है, वह धुँधली है। विहँसता चेहरा है, और जब वह हँसती है, तो कपोलों में एक हलका गड्ढा हो जाता है।

भारती को देख कर जयन्त को अपनी बहिन कान्ता याद आ गई। वह भी ठीक ऐसी ही दीखती है। उसके कपोल भी हँसते समय ठीक ऐसे ही हो जाते हैं।

ओमप्रकाशजी बोले—"भारती को साहित्य, राजनीति और सामाजिक प्रश्नों में अधिक दिलचस्पी है। आप इससे खूब बहस कर सकते हैं, जयन्त बाबू! वाद-विवाद में कई तमगे ले चुकी है।"

भारती ने तुनककर कर कहा—"जाओ भैया, तुम तो केवल खिझाते हो।"

उस दिन जयन्त जब लौटा, तो अपने को बहुत कुछ हलका पा रहा था। इधर जिन्दगी ऐसी व्यस्त हो गई थी, कि वह इसकी एकरसता

करने का अर्थ है मनमुटाव। और जयन्त मनमुटाव करना नहीं चाहता। फलत रात की नींद वह सुबह देर तक सोकर पूरी कर लेता है।

जयन्त आज कई दिनों से एक पुस्तक लिखने का विचार कर रहा है। मस्तिष्क में बहुत-सा कुछ भर गया है। आज की विषमताओं को देखकर उसके हृदय में एक तीव्र अनुभूति उत्पन्न हुई है। पुस्तक के विषय वह सोच चुका है। इस पुस्तक में वह सामाजिक विषमताओं पर तीव्र आघात करेगा। पुस्तक का नाम भी वह चुन चुका है—'नरक की तस्वीरें।'

'नरक की तस्वीरें' कोई मनोरंजन या सस्ती भावुकता की वस्तु नहीं होगी। यह एक ऐसी पुस्तक होगी, जो नश्तर की तरह समाज के गलित अंगों को काटने में नहीं हिचकेगी। वह सारे मवाद को दिखला कर कहेगी - यही तुम्हारा स्वास्थ्य है। ऐसे ही शरीर को लेकर तुम खुशी में फूले नहीं समाते...

किन्तु जयन्त न तो वातावरण अनुकूल पा रहा है, न 'मूड'। वे दो बंगाली युवक इतनी जोर से बातें करते हैं कि जयन्त झल्ला उठता है। उधर रह-रह कर मिश्रजी भी उर्दू के शेर, संस्कृत के श्लोक और ब्रज-भाषा के दोहे बड़े प्रेम से अलापने लगते हैं। आश्चर्य की बात तो यह है कि बहुत देर तक पूजा करनेवाले ये महाशय अधिकतर श्रृंगारिक पद ही गाते हैं! जयन्त ने लोगों से सुना था कि मिश्रजी बड़ी रंगीली तबीयत के आदमी हैं। आज वह बात प्रमाणित भी हो गई।

सुबह जब जयन्त सोकर उठा, तो देखा कि मिश्रजी किसी जवान लड़की को छेड़ रहे हैं। कपड़े और चेहरे से जयन्त ने अनुमान कर लिया कि यह मिश्रजी की दाई की लड़की है। यदा-कदा माँ की अनु-पस्थिति में वह काम करने आ जाती है। मिश्रजी भक्त सज्जन हैं, अत' बासे में नहीं खा सकते। अपने हाथों से वे रसोई पका लिया करते हैं। बड़े तड़के उठते हैं, और स्नाना बन.कर पूजा-घर में जा घुसते हैं।

खाने-पीने के बाद जयन्त ने पुस्तक का श्रीगणेश कर दिया। भाव इकट्ठे थे, भाषा पर जयन्त का अधिकार-सा था। कलम जब दौड़ी, तो बराबर दौड़ती रह गई। नरक की तस्वीर तैयार होने लगी।

दिन बीत चले।

अपना सारा समय जयन्त पुस्तक लिखने में लगा रहा था। इन दिनों सर्वत्र सन्नाटा छाया रहता। प्राय सभी व्यक्ति छुट्टी का उपयोग करने गये थे।

पन्द्रह रोज के अनवरत परिश्रम के बाद पुस्तक तयार हो गई। यह न कोई उपन्यास था न कोई हास्य-पुस्तक। इसमे कई निबन्ध थे और इन निबन्धो मे सामाजिक विषमताओ का खाका चित्रण किया गया था।

बीच में दो-तीन बार ओमप्रकाशजी मिलने आये। चाय का निमत्रण भी दिया, किन्तु अत्यन्त नम्र शब्दो मे जयन्त ने अपनी लाचारी दिखलाई।

ओमप्रकाशजी हँस कर बोले—मै आपके काम मे बाधा नही डालूँगा। आप पुस्तक समाप्त करके ही आयें। भारती आपकी पुस्तक देखने को बहुत उत्सुक है।

पुस्तक समाप्त कर जयन्त ने सन्तोष की एक साँस ली। उसे बड़ी तृप्ति और प्रसन्नता हुई। यूनिवर्सिटी का रिकार्ड तोड़ने के उपलक्ष्य मे तालियों की गड़गड़ाहट के बीच मान का तगमा पाते हुए भी इतनी खुशी उसे नहीं हुई थी। यह पुस्तक उसे शारदा का समर्थित करेगा, उसने यही निश्चय किया।

सन्ध्या को वह ओमप्रकाशजी के यहाँ गया। ओमप्रकाशजी अपनी पत्नी के साथ कुछ खरीदने बाजार गये थे। भारती ने उत्कंठित होकर कहा—'आइये जयन्त बाबू!'

भारती के मुख पर अकेलेपन का इतना गहरा भाव देख कर जयन्त को कुछ चकित होना पड़ा।

भारती खूब बोलती है। बिना झिझक के वह बातें देर तक बोल सकती है।

चाय का प्याला बढ़ा कर भारती बोली—"मैं रोज आपकी राह देखती थी।"

जयन्त के हाथ से पुस्तक की पाण्डुलिपि लेकर वह उलट पुलट कर देखने लगी। पहला निबन्ध था—'हमारा दम्भ'। इसमें बतलाया गया था कि झूठी इज्जत और मिथ्या आडम्बरों से आज न जाने कितनी कलियाँ पिस रही हैं ..

भारती साँस रोक कर पढ़ रही थी। वह भूल गई कि उसके सामने जयन्त है, जो उसका मेहमान है। इस तरह न जाने कितने मिनट निकल गये। निबन्ध खतम होने पर भारती एक दीर्घ साँस लेकर बोली—"ओह!"

जयन्त मेज पर पड़ी किसी पुरानी पत्रिका के पन्ने उलट रहा था। मुस्करा कर उसने पूछा—"आपको पसन्द आ रही है?"

भारती की आँखें जयन्त के चेहरे पर स्थिर हो गईं। वह बोली—"भारत की सभी भाषाओं में इसका अनुवाद होना चाहिए। आपके विचार आश्चर्यजनक रूप से मेरे विचारों के साथ मेल खा रहे हैं!" अन्तिम बात कहते, हुए, भारती के मुख पर लज्जा की एक हलकी रेखा दौड़ गई।

इतने में ओमप्रकाशजी आ गये। बोले—"भई वाह! आखिर मेरी लगन आपको खींच ही लाई!"

जयन्त मुस्कराने लगा।

भारती ने ओमप्रकाश की ओर देख कर कहा—"भैय्या, जयन्त बाबू की यह किताब तुमने देखी है?"

ओमप्रकाश मुस्करा कर बोले—"जयन्त बाबू स्वयं एक खुली किताब हैं, भारती! जयन्त बाबू तो उच्च मस्तिष्क के आदमी ठहरे!"

हिन्दी के प्रकाशकों का अनुभव जयन्त को नहीं था। उसे विचित्र-विचित्र बातें सुनने को मिलीं।

एक प्रकाशक ने पूछा—"यह जासूसी उपन्यास है ?"

"जी, नहीं।" जयन्त ने जवाब दिया।

"हम तो जासूसी-उपन्यासों को छोड़ और किसी तरह की पुस्तकें नहीं छापते।"

एक दूसरे प्रकाशक के पास जाने पर वे बोले—"महाशयजी, मैं सामाजिक उपन्यास छापता हूं। लेख वेख की किताब बाज़ार में नहीं चलती !"

तीसरे महोदय तो और भी विचित्र निकले। आँखे मटका कर पूछा—"इसमें कुछ चटपटी चीजें हैं ?"

"चटपटी !" जयन्त को आश्चर्य हुआ।

"हमारा मतलब कुछ रंगीन बातें...यानी जिसको पढ़ कर सीना दाब लेना पड़े !"

जयन्त को उनकी भाव-भंगिमा अत्यन्त हेय मालूम हुई। झल्ला कर बोला—"जी नहीं, सीना और पेट दाबनेवाली यह किताब नहीं है। इसमें सिर्फ लेख हैं।" कि

"लेख ! लेख छाप कर क्या होगा ?" प्रकाशक महोदय मुँह विकृत कर बोले।

वह एक प्रकाशक के यहाँ और गया। वे शुद्ध साहित्यिक पुस्तकों का प्रकाशन करते थे। वे पुस्तक को उलट पुलट कर बोले—"छाप दूंगा; किन्तु इसके लिए पैसे आपको नहीं दे सकूँगा !"

'मुफ्त !' जयन्त को कुछ ग्लानि आई। मुफ्त का माल खाते ही खाते इनकी तोंद निकल आई है !

वह चुपचाप डेरे पर लौट आया। रविवार का सारा दिन चक्कर

काटते ही बीता। निराश होकर उसने अपनी पुस्तक पर दृष्टि डाली। जिसे लिखने में वह अपनी सारी प्रतिभा लगा चुका है, वह क्या अप्रकाशित ही रह जायगा ?...

आज संध्या को वह भारती के यहाँ जाने का वादा कर चुका है। मन थका था, फिर भी वचन पूरा करने को गया ही।

चाय का घूँट पीकर जयन्त किञ्चित् मुस्करा कर बोला—"जिस पुस्तक को भारती देवी बेजोड़ कहती है, उसे कोई छापने को तैयार नहीं है !"

"छापने को तैयार नहीं है !" भारती चकित रह गई।

मुस्करा कर संक्षेप में जयन्त ने आज का अनुभव सुना दिया।

भारती दृढ़ स्वर में बोली—"उसका प्रकाशन आप स्वयं कीजिए, जयन्त बाबू !"

जयन्त मुस्करा कर रह गया।

ओमप्रकाश बोले—"मैं भी मदद करूँगा भाई। तुम किसी और के पास मत जाओ।"

जयन्त अन्यमनस्क होकर चुप रह गया।

डेरे पर लौट कर जयन्त ने अपने को बड़ा क्लान्त पाया...न जाने क्यों मन व्यथा से भर गया था।

× × ×

दिन बिना किसी नवीनता के बीतने लगे। जयन्त जब किसी तरफ से लापरवाह होता है, तो फिर शायद ही उसका ध्यान उस ओर जाता है। पाण्डुलिपि को उसने सूटकेस में बन्द कर दिया। सोचा—जब छपने का अवसर आयगा, पुस्तक छप ही जायगी।

सप्ताह और मास बीत चले। जयन्त अपने को बड़ा शिथिल पा रहा था। उसकी इच्छा हुई, त्याग-पत्र दे दे। किन्तु न जाने क्यों, वह ऐसा नहीं कर सका।

वाले सज्जन वहम करते ही रहते थे। हाँ, कभी-कभी यह जोश साहित्य से उतर कर राजनीति पर आ टिकता था। मिश्रजी की पैंतालीस मिनट की पूजा में एक सेकेण्ड का अन्तर भी नहीं आता था।

एक दिन ऑफिस की छुट्टी के बाद ओमप्रकाशजी बोले—"भई, आप तो उस ओर का रास्ता ही भूल गये !"

उत्तर में जयन्त सिर्फ मुस्कराया।

"आपसे कुछ विशेष बातें करनी है।" ओमप्रकाशजी जरा गम्भीर होकर बोले।

जयन्त ने प्रश्न भरी आँखों से उनकी ओर देखा।

"आपसे एक निवेदन है। यदि आप ऐसा कर सकें, तो मुझे बड़ी खुशी होगी . ।"

जयन्त बोला—"कहिये ।"

ओमप्रकाश बोले—"आपने अपने परिचय के दिन कहा था कि आपकी पत्नी का देहान्त हो चुका है। कष्ट की बात तो है ही। आप कुछ शोक में होंगे, इसलिये अब तक बात न छेड़ सका।"

जयन्त चुपचाप सुन रहा था।

ओमप्रकाशजी उसी स्वर में बोले—"हम लोगों की भी इच्छा है और भारती भी...।"

जयन्त का मुख गम्भीर होता आया।

"आपके साथ भारती सुखी रह सकेगी। मैंने अन्दाज कर लिया है कि वह इस विवाह से अत्यन्त प्रसन्न होगी . ।"

जयन्त का मुख अत्यन्त गम्भीर हो गया। वह सिर्फ चुप रहा।

ओमप्रकाश उसके चेहरे की ओर देख, कुछ हैरान होकर बोले—"क्यों, आपको कुछ नागवार.. ?"

जयन्त ने शान्त स्वर में कहा—"इसमें नागवार लगने की कोई

उत्तर में एक करुण मुस्कराहट मात्र जयन्त के ओठों पर दौड़ पड़ी।

(१५)

दूसरे दिन जयन्त घर लौट आया।

पिता यह सुन कर बड़े खुश हुये कि जयन्त इस्तीफा देकर लौटा है। हुक्के का कश खींच मुस्कराते हुये बोले—"सुबह का भूला यदि शाम को घर आ जाय, तो उसे भूला नहीं कहते।"

.. किन्तु जयन्त के पिता को क्या मालूम कि जयन्त सुबह का ही नहीं, शाम का भी भूला हुआ है!

एम० ए० का परीक्षा-फल आ गया था। सदा की भाँति जयन्त का नाम इस बार भी आगे था। अपने आखिरी पेपर पर थोड़ी आशंका थी। खैर जो हो, जयन्त का जो क्रम था, वह झुका नहीं। लड़खड़ाता पैर भी अभ्यस्त होने के कारण ठीक जगह पर ही पड़ता है।

किन्तु सवाल था, समय कैसे कटे? या तो चुपचाप कमरे में बैठ बर्नार्ड शा और हक्सले की पुस्तकें पढ़ी जायें या दोस्तों की चौकड़ी जमे। जयन्त दोनों से ऊब चुका है। पुस्तकें पढ़ते-पढ़ते माथा झनझना उठता है, और दोस्तों की बातचीत में बहुत हलका मनोरञ्जन मिलता है।

पिता ने एक दिन दबी जबान में घुमा-फिर कर कहा—"बहुत दिनों से लड़की का बाप मेरे आगे गिड़गिड़ा जाता है। जमींदार है और पूरी रकम..।"

जयन्त दृढ़ स्वर में बोला—"लड़की के बाप से कहिये कि अपनी लड़की को जहर घोल कर पिला दे।"

जयन्त की आवाज इतनी शक्त थी कि उस दिन से पिता फिर चर्चा छेड़ने का साहस न कर सके।

इसी तरह कुछ सप्ताह कटे। गुमसुम, वह अपने में खोया रहता। न हँसता, न जल्दी बोलता।

पडोसी जयन्त के पिता से पूछते—"आपके लडके को क्या हुआ है ?"

जयन्त के पिता उदास चेहरे से उत्तर देते—"क्या कहूँ भाई कुछ समझ में नही आता !"

पडोसी सहानुभूति दिखला कर चले जाते ।

जयन्त ने एक खत रामनाथजी के पास भेजा था। न जाने क्यों जयन्त को कुछ आशका हो रही थी कि शारदा को उसके माधव भैय्या इतनी जल्द नही छोड देंगे। अभी शायद शारदा बहुत पुरानी नहीं पडी हो !

आशका ठीक निकली। एक सप्ताह बाद रामनाथजी का एक कार्ड आया। उन्होंने लिखा था :

'प्रिय जयन्त बाबू,

आपकी चिट्ठी मिली। आपका अनुमान ठीक है। तीन महीने तक शारदा यहाँ रही। बाद में दारोगाजी की चिट्ठी आई कि वे शारदा को लेने आ रहे हैं। उन्होंने यह भी लिखा था कि खाने-पीने में बहुत तकलीफ हो रही है। इच्छा न रहते हुये भी विदा करनी पडी। शारदा यहाँ प्राय. बीमार ही रही। बहुत ही दुबली-पतली हो गई है। मुझे उसके भाग्य पर जो दु ख है, उसे मैं शब्दों में नही व्यक्त कर सकता। आशा है, आप सकुशल होंगे।'

पत्र पढ़ कर जयन्त ने एक दीर्घ साँस ली। मेमना आज फिर खूँख्वार पशु के पञ्जे में है ! माधव भैय्या का हण्टर सम्भवत और भी तेजी से अपना पौरुष दिखलाता होगा .

मन में एक हूक उठी। ओठों पर एक करुण मुस्कराहट आई। जयन्त ने सोचा, वह कितना असमर्थ है ! उसकी आँखों के सम्मुख एक बलि हो रही है। नाजुक, कोमल गरदन को बलि-वेदी पर रख दिया गया है। हत्यारा अपनी तलवार पर सान दे रहा है...और

मेरी पर चढ़ी जो गरदन है, उसमें दो आँखें भी हैं। इन आँखों की भाषा क्या दुनिया कभी पढ़ सकी है ? हाय, इन आँखों की भाषा तो इतनी साफ है कि मानो बोल रही है...

कभी-कभी जयन्त चकित होकर सोचता है, क्या वह पागल हो जायगा ? इतना असन्तोष बटोर कर आदमी का मस्तिष्क कभी स्वस्थ रह सकता है ?...

जयन्त ने एक निश्चय किया है। वह यहाँ से दूर चला जायगा—इतनी दूर कि वह अपने को स्वस्थ रख सके। पेशावर के कालेज में उसे प्रोफेसर की जगह मिल गई है। पाँच-छः रोज में जाना होगा।

कल वह इलाहाबाद जा रहा है। वहाँ 'कन्वोकेशन' है। डिगरी लेकर सीधे वह पेशावर जायगा।

पिता सुन कर बोले—"क्यों बेटा, तू फिर पेशावर क्यों जा रहा है ? प्रोफेसरी करके क्या होगा ? सिविल-सर्विस में जो शान है वह प्रोफेसरी में कहाँ ? तू ठहर जा बेटा, कई जगहें खाली हुई हैं।"

जयन्त ने शान्त स्वर मे कहा—"मैं प्रोफेसरी ही करूँगा।"

पिता के मुख पर असन्तोष आया। वे कुछ झल्ला कर बोले—"तू हमेशा जिद ही करता रहेगा, जयन्त ?"

जयन्त ने स्थिर स्वर में कहा—"यह जिद नहीं, मेरा निश्चय है।"

×   ×   ×

जयन्त चला गया। पिता की बची-खुची आशा को व्यर्थ कर गया। जयन्त को सिविल-सर्विस में देख कर उन्हें कितनी खुशी होती ! किन्तु जयन्त था, जो चला गया। पिता की बहुत ऊँची अभिलाषाएँ वह साथ लेता गया। जयन्त के सिविल-सर्विस की परीक्षा पास करने के पश्चात् शादी में कितनी मोटी रकम मिलेगी, इसका अन्दाजा उनकी पेशकार बुद्धि ने लगा लिया था।

जयन्त 'कन्वोकेशन' में शरीक हुआ। देश के कोई बहुत बड़े नेता भाषण दे रहे थे। अन्यमनस्क होकर जयन्त उनका भाषण सुन रहा था। उसे लग रहा था मानो यह सब ढोंग है!

सोने का मेडल और 'फर्स्टक्लास फर्स्ट' की डिग्री जयन्त ने निर्विकार भाव से ले ली। हजारों आँखें उसकी ओर मुड़ीं। जयन्त के सौभाग्य को देख कर और लड़कों के हृदय में एक ईर्ष्या हुई।

'कन्वोकेशन' खतम होने पर, साथियों की नज़र बचाता, जयन्त तेजी से निकल गया। बहुत देर तक वह जोर-जोर से साँसें लेने लगा, मानो वह कोई गन्दी जगह से आ गया हो!

गाऊन उतार कर उसने अपने कपड़े पहिन लिये। संध्या को निरर्थक रूप से सड़कों पर चक्कर लगाता रहा। गाड़ी एक बजे रात को मिलेगी। मन में द्वन्द्व था। एक पैर आगे बढ़ना चाहता था, दूसरा पीछे हटना चाहता था।

...शारदा से भेंट करता जाय? ..यही प्रश्न था, जिसे लेकर वह बहुत देर तक मस्तिष्क में उधेड़बुन करता रहा। लालसा ने विजय पाई, शारदा को देखने का प्रलोभन आगे बढ़ कर रहा। रात के ग्यारह बज चुके थे। बहुत देर के बाद वह निश्चय कर पाया था।

...माधव-भैया के दरवाजे पर आकर जयन्त ठिठक गया। दरवाज़े पर हाथ लगाया, तो वे खुल गये। जयन्त ठिठक रहा। ऐसे जाना क्या ठीक है?...किन्तु सोचते-सोचते ही वह आगे बढ़ गया। तीखी आवाज़ें आ रही थीं। बगल के कमरे में जाकर खिड़की से झाँक जयन्त ने जो दृश्य देखा, उससे वह सन्न रह गया .माधव की गोद में एक जवान औरत बैठी थी। औरत के चेहरे पर बाज़ारूपन साफ झलक रहा था। जयन्त को यह समझने देर न लगी कि यह कोई बाजारू औरत है.

पीछे शारदा पायताने खड़ी थी। उस बाजारू-औरत ने माधव के गले में हाथ डाल कर कहा—"देखो प्यारे, यह मेरे पैर नहीं दाबती!"

काँच के गिलास में शराब उंडेल, भर्राई आवाज़ में माधव बोला—"अरी ओ टाइपिस्ट की बच्ची ! मैं कहता हूँ, इसके पैर दाब।"

शारदा मौन खड़ी रही।

बाजारू औरत माधव के गाल पर अपने गाल रख कर बोली—"देखो न प्यारे, कहाँ दाबती है !"

माधव नशे में लड़खड़ा कर उठा। भर्रा कर बोला—"तू इसके पैर नहीं दाबेगी ?"

शारदा की क्षीण, किन्तु दृढ़ आवाज़ आई—"मैं इस कलमुँही के पैर दाबूँगी !.. इसके मुँह में आग नहीं लगा दूँगी !"

"क्या ?" तड़ाक से एक तमाचा शारदा के गाल पर पड़ा।

बाजारू औरत पलंग से उतर आई। शारदा के केश खींच कर बोली—"तू मुझे कलमुँही कहती है !"

"छोड़ ." कह कर शारदा ने तमतमा कर हाथ का तमाचा उसके मुँह पर जमाया।

"अरे ! बाप रे !" बाजारू औरत चीख उठी।

माधव की आँखें नशे में और भी लाल हो उठीं। उसने शारदा के पेट में कसकर ठोकर मारी.

एक 'चीख' निकली, मुँह से खून फफका और शारदा मछली की तरह जमीन पर गिर गई।

और उधर जयन्त के सिर पर खून चढ़ा, दिमाग की नसें फटती-सी लगीं.. वह आँधी की तरह घूमा.. पागलों की तरह अट्टहास कर माधव की छाती पर सवार हो गया और उसका गला दबोचता गया...दबोचता गया ..

बाजारू औरत चिल्ला कर भागी—"खून.. खून !" कुछ ही क्षणों में एक छोटी भीड़ कमरे में घुस आई...

जयन्त पागल की तरह अट्टहास कर रहा था...

शेष

समय का पंछी वर्ष के दो दीर्घ सागर पार कर गया।

दुनिया उसी तरह चल रही है। लोग उसी तरह अपने जीवन को जागरूक बनाये है। चेतन ही जीवन है जागरूक जीवन का पर्याय-वाची है।

नरेश अपनी नव-विवाहिता पत्नी के साथ राँची घूमने आया है। उसके एक मित्र यहाँ के पागलखाने में डाक्टर है।

नरेश ने कहा—"भई, जरा पागलों की दुनिया भी दिखलाइये!"

डाक्टर मित्र हँस कर बोले—"पागलों की दुनिया देखकर क्या कीजिएगा, नरेश बाबू? अच्छा, चलिये।"

नरेश की पत्नी ने कहा—"बहुत दिनों से मैं भी इस दुनिया को देखना चाहती थी!"

थोड़ी देर तक वे लोग इधर-उधर देखते रहे। डाक्टर मित्र ने कहा—"आइए, अब आप लोगों को मैं कुछ पढ़े-लिखे, किन्तु खूँख्वार पागल दिखलाऊँ..।"

तीनों चलते चले। डाक्टर मित्र बोले—"इधर आइए। इस पागल को देखिए। यह एक 'फर्स्ट क्लास फर्स्ट' एम० ए०...।"

उनकी बात अभी पूरी भी न हो पाई थी कि दो चीखें निकल गईं।

नरेश और उसकी पत्नी के चेहरे स्याह पड़ गए. डाक्टर मित्र ने पूछा—"क्यों, आप लोग इसे जानते हैं?"

वे दोनों अब तक एकटक उस पागल को देख रहे थे, जो हँसता था, मुँह बनाता था और किलकारियाँ मारकर चिल्ला उठता था...

नरेश ने विस्मय में डूब कर अपनी पत्नी से पूछा—"तुम इसे जानती हो, भारती ?"

भारती कुछ क्षणों तक मूक रही। आँखों में आँसू भर एक बार उसने पागल की ओर देखा, दूसरी बार अपने पति की ओर। अन्त में सूखे गले से वह बोली—"नहीं..!"

नरेश का विस्मय और बढ़ गया—"तब तुम क्यों चीख उठीं ?"

रुँधे गले से भारती बोली—"देखते नहीं, कितना खूँख्वार चेहरा है !"

नरेश ने रूमाल से अपने आँसू पोंछ कर कहा—"किन्तु एक दिन, यह हमारे क्लास का सबसे तेज ही नहीं, बल्कि सबसे खूबसूरत लड़का भी था, भारती !"

डाक्टर मित्र चकित दृष्टि से नरेश की ओर देख रहे थे। उनकी ओर मुड़कर नरेश ने करुण मुस्कान के साथ कहा—"एक दिन पागल का अच्छा अभिनय करने के लिए इसे सोने का मेडल मिला था। आईने के सामने यह पागल बनने का अभिनय करता था, डाक्टर साहब ! किन्तु कौन जानता था, इसका अभिनय इतना सच्चा होकर रहेगा !..."

भारती को लगा, उसे 'फिट' आ रहा है. वह गिरी-गिरी.. गिर ही गई !

× × ×

टिप टिप . टिप

रेमिंगटन-मशीन पर रामनाथजी की अँगुलियाँ चल रही हैं। जिस तरह उनकी अँगुलियाँ द्रुतगति से अविराम चल रही हैं, मन उनसे बाजी मार लेना चाहता है ..

रामनाथजी बहुत कुछ सोचते हैं। सोचते है कि सोचना खतम नही होता .

रेखा का ब्याह ! रेखा का ब्याह होना चाहिए। बिरजू का नाम कट गया है। मकानवाला रोज धमकी दे जाता है।...रेखा सत्रह पार कर रही है...एक दिन शारदा ने भी सत्रह पार किया था।...और अब शारदा कहाँ है ? . शारदा नही है। वह खो गई। कहाँ खो गई ?

❀ समाप्त ❀